निबन्ध माला

गुलाबराय

निबन्धमाला
कृत
गुलाबराय

सूची

विषय

पृष्ठ संख्या

भूमिका

श्री गुलावराय द्वारा लिखित यह निवंधमाला आज से वहुत वर्ष पूर्व लिखी गई थी। विद्यार्थियों ने इसे वहुत अधिक पसन्द किया। इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। पर अब समय वदल गया है, इसलिए हमने नये समय और नई परिस्थितियों के अनुसार इसमें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक समझा। इसमें अनेक निवंध संक्षिप्त कर दिये गये हैं, आज की दृष्टि से कुछ अनावश्यक निवंध निकाल दिये गये हैं, कुछ नये आवश्यक निवंध लिखे भी गये हैं। विद्यार्थियों के लिए इसे अधिक उपयोगी वनाने के विचार से पत्र-लेखन का एक नया प्रकरण भी वढ़ा दिया गया है। हमें विश्वास है कि इन नये परिवर्त्तनों से यह पुस्तक वहुत उपयोगी हो गई है। पुस्तक का संशोधन और परिवर्धन श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालंकार ने किया है। हम उनके आभारी हैं।

—प्रकाशक

निबन्ध-लेखन

किसी एक विषय पर अपने विचारों को क्रमबद्ध कर सुन्दर, सुगठित, सरस और सुबोध भाषा में लिखने को निबन्ध वा प्रबन्ध कहते हैं। प्रबन्ध-लेखन भी एक कला है। उसमें निपुणता प्राप्त करने के लिए उसके नियमों को जानना तथा उनके अनुकूल लिखने का अभ्यास करना आवश्यक है। प्रत्येक निबन्ध में दो बातें होती हैं—एक तो अपने भावों और विचारों को एकत्र कर उनको क्रम-बद्ध करना और, दूसरे उनको शुद्ध, सुबोध, सरस (रोचक) और प्रभाव-पूर्ण भाषा में रखना। पहली बात को हम सामग्री कहेंगे और दूसरी को शैली।

लेख के लिए सामग्री का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन के लिए खाद्य पदार्थ। सामग्री एकत्र करने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं (१) निरीक्षण, (२) अध्ययन, (३) मनन। लेखक को चाहिए कि संसार में आँख खोल कर चले, जिस बात को देखे उसको मन में जमा लेने का उद्योग करे, खूब पढ़े और जो कुछ देखे वा पढ़े उस पर खूब विचार करे। अपने अध्यापकों के साथ बातचीत द्वारा विचार-विनिमय भी बहुत कुछ सहायता देता है। उसमें दोनों पक्ष ज्ञात हो जाते हैं।

सामग्री

लेखक को चाहिए कि जिस पर लिखना हो उसके सम्बन्ध में जितने विचार आवें उन्हें लिख ले। जहाँ तक हो दोनों पक्षों की बातें सामने रक्खे। सामग्री एकत्र करने का सब से सहज उपाय यह है कि हम उस विषय के सम्बन्ध में जितने प्रश्न हो सकते हों उतने प्रश्न उपस्थित करें। अपनी

सामग्री इकट्ठा करना

स्मृति और कल्पना से काम ले कर जो कुछ हमने उस विषय के संबंध में निरीक्षण या अध्ययन से जाना हो उसको अपने सम्मुख रखें।

हमारे सभी विचार ठीक नहीं होते। जितने विचार हमारे मन में आते हैं उनमें कुछ आवश्यक होते हैं कुछ अनावश्यक और कुछ पुनरुक्ति-मात्र होते हैं। जिस बात को प्रधानता देनी हो उसके संबंध की छोटी-छोटी बातों का वर्णन करना बुरा नहीं है, अपितु कहीं-कहीं आवश्यक होता है; किन्तु जहाँ उन्हें प्रधानता न देनी हो वहाँ उनका वर्णन करना व्यर्थ होता है। यदि हमको वर्षा का वर्णन करना है तो मेघ-मालाओं के इकट्ठा होने, बिजली के चमकने, मेंढकों के टर्राने तथा मोरों के नाचने आदि का वर्णन करना आवश्यक हो जाता है; परन्तु यदि हमको 'वर्षा से हानि या लाभ' विषय पर लिखना हो तो उसमें मयूर के नाचने या मेंढकों के टर्राने का वर्णन हास्यास्पद होगा। अपनी सामग्री में से अनावश्यक, असंबद्ध तथा बार-बार दुहराई हुई बातों को निकाल देना परम वाञ्छनीय है।

सामग्री का संशोधन

हमको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ हम लिखें वह बाह्य स्थिति और घटना-क्रम के विरुद्ध न हो अर्थात् कोई बात देश और काल के विरुद्ध न लिखें।

सामग्री को क्रम-बद्ध करने से पहले एक विषय की परस्पर संबद्ध बातें एक साथ रख लेनी चाहिएँ। फिर उनको एक स्वाभाविक क्रम में कर लेना चाहिए। जैसे—यदि किसी राजा के संबंध में लिखना है तो उसके कुल का परिचय दे कर उसके जन्म का स्थान और सन् संवत् लिखना चाहिए; किन्तु यदि हम पहले विवाह का हाल अथवा बच्चों का हाल लिख दें तो ठीक

सामग्री को क्रम-बद्ध करना

न होगा। इसी प्रकार रेल का वर्णन करते हुए यदि हम पहले से ही तीसरे दर्जे के यात्रियों की करुणाजनक कठिनाइयों का वर्णन करने लग जावें तो अच्छा नहीं मालूम होता। सामग्री को क्रमवद्ध कर लेने के पश्चात् संशोधित सामग्री को संदर्भों वा परिच्छेदों (Paragraphs) में बाँट लेना चाहिए। एक परिच्छेद में एक ही मुख्य विचार रहना चाहिए। इसी को लेख का ढाँचा कहते हैं।

लेखों के प्रकार

यद्यपि विपयों की अनन्तता के कारण प्रबन्धों के अनेक प्रकार हो सकते हैं तथापि उनमें तीन मुख्य हैं (१) वर्णनात्मक, (२) विवरणात्मक, (३) विवेचनात्मक। ये विभाग ऐसे नहीं हैं जो एक दूसरे से बिलकुल अलग हों। एक प्रकार के लेख में दूसरे प्रकार के लेख की थोड़ी-बहुत सामग्री आ ही जाती है। वर्णनात्मक लेख में थोड़ी बहुत विवेचना रहती ही है और विवेचनात्मक लेखों में भी थोड़ा बहुत वर्णन आ जाता है। इसी प्रकार विवरणात्मक लेखों में भी अन्य दोनों प्रकार के लेखों की सामग्री का समावेश हो जाता है।

वर्णनात्मक

जिन लेखों में पशु-पक्षियों, नगरों, नदियों, पर्वतों, प्राकृतिक दृश्यों, कारखानों, संस्थाओं आदि का स्पष्ट और ब्योरेवार वर्णन होता है, वे वर्णनात्मक कहलाते हैं। इनके अंतर्गत प्रायः ऐसी चीजों का वर्णन रहता है जो किसी देश-विशेष में स्थित हों। इनमें एक प्रकार का शाब्दिक चित्र सा खींचना पड़ता है। इस प्रकार के लेखों का प्रायः वर्तमान समय से संबंध रहता है। अर्थात् इन लेखों में ऐसी बातों का वर्णन होता है जो बीत न चुकी हों, जो अब भी मौजूद हों अथवा हो सकती हों।

जिन लेखों में बीती हुई घटनाओं का काल-क्रम से वर्णन होता

है वे विवरणात्मक कहलाते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं, जीवनियों, यात्रियों आदि से सम्वन्ध रखने वाले वर्णन इसी प्रकार के लेखों के अन्तर्गत माने जाते हैं।

विवरणात्मक

जिन लेखों में किसी विषय पर विचार किया जाता है अर्थात् उसके कारणों गुण-दोषों और हानि-लाभ आदि की विवेचना की जाती है उनको विवेचनात्मक कहते हैं। इस प्रकार के लेखों के अंतर्गत प्रायः आध्यात्मिक, मनोविज्ञान-संवंधी, सामाजिक और राजनीतिक विषय रहते हैं। विवादग्रस्त विषयों में पक्ष और विपक्ष दोनों की विवेचना रहती है। जिस लेख में हृदय से अधिक काम लिया जाता है और भावों तथा मनोवेगों का प्राधान्य होता है उस लेख को भावात्मक कहते हैं।

विवेचनात्मक

मुख्य-मुख्य प्रकार के लेखों की कुछ आवश्यक वातें

वर्णनात्मक विषयों के अंतर्गत पशु-पक्षियों के वर्णनों में निम्न-लिखित वातें लिखना आवश्यक होता है।

१. वह कहाँ पाया जाता है ? जंगली है या पालतू ?
२. वह कौन जाति का है ? जलचर है, थलचर है अथवा खेचर (आकाश में चलने वाला) है ? वह अंडज है अथवा स्तन-पोषित ?
३. उसका वर्णन—उसके कितने पैर होते हैं ? सींग होते हैं या नहीं ? उसका रूप कैसा होता है ? उसकी ऊँचाई कितनी होती है ?
४. उसका स्वभाव—वह अकेला रहना पसन्द करता है या झुंड में रहता है ? वह क्या खाता पीता है ? उसके संवंध में कोई विशेष वात तो नहीं है ? जैसे उल्लू का रात में देखना।
५. वह किस उपयोग में आता है ?

इसी प्रकार कुछ अन्तर से वृक्षों आदि के बारे में लिखा जा सकता है।

नगर का वर्णन—

१. नामकरण—नाम पड़ने का क्या कारण है? उसे किसने और कब बसाया?

२. भौगोलिक स्थिति—किस देश या किस प्रान्त में है? किस नदी पर बसा है?

३. शहर की बनावट—बाजारों, सड़कों, मकानों आदि का वर्णन।

४. दर्शनीय स्थान।

५. व्यापार—वह किस चीज़ के लिए मशहूर है?

६. उत्सव आदि।

जीवनी—

१. आविर्भाव काल।

२. कुल-परिचय और जन्म (सन् संवत् आदि)

३. पालन-पोषण, विद्योपार्जन आदि।

४. विवाह।

५. जीवन की विशेष घटनाएँ—किस घटना के कारण उसका जीवन-पथ निश्चित हुआ, वह बात भी लिख देनी चाहिए।

६. मृत्यु कब और कहाँ हुई?

७. संसार में उसने क्या कार्य किया?

विवेचनात्मक विषय—जैसे धैर्य, उदारता, साहस आदि।

१. व्याख्या।

२. उसका क्या महत्त्व है और उसके क्या लाभ हैं?

३. उसके कुछ ज्वलन्त उदाहरण।

४. उपसंहार—उस गुण के धारण करने के लिए पाठक को प्रोत्साहन देना। यदि किसी चीज़ से कुछ हानियाँ हैं तो वे भी लिख देनी चाहिएँ।

लोकोक्तियों के ऊपर भी इसी प्रकार निबन्ध लिखे जा सकते हैं।

कहीं कहीं विवेचनात्मक लेखों में विषय की व्याख्या न कर थोड़ी भूमिका बाँध देते हैं। इस भूमिका को शीर्षक में चाहे भूमिका करके लिख दिया जावे, चाहे उसे प्रवेश कह दें।

यदि हमको हिन्दू समाज की त्रुटियों पर लिखना है तो पहले भूमिका में लिख देना चाहिए कि समाज में त्रुटियाँ किस प्रकार आती हैं। उसके पश्चात् एक-एक त्रुटि के संबंध में अलग-अलग लिख कर बाद में उनके निराकरण के जो उपाय हों, उन्हें लिख देना चाहिए।

कई लोग परिच्छेदों के शीर्षक लिख देते हैं। बहुत से लोग इस क्रम को मन ही मन में रखते हैं और कोई शीर्षक नहीं देते। शीर्षक लिखे जावें, या न लिखे जावें, लेख में क्रम अवश्य रहना चाहिए। एक परिच्छेद में एक ही बात होनी चाहिए।

यद्यपि सामग्री और शैली के संबंध में अलग-अलग विवेचना की जा रही है तथापि इन दोनों को बिलकुल अलग अलग नहीं किया जा सकता। एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता ही है।

शैली

विचार की स्पष्टता से भाषा में स्पष्टता आती है और भाषा की स्पष्टता से विचारों की स्पष्टता मालूम होती है।

यद्यपि एक अर्थ के बोधक बहुत से शब्द होते हैं तथापि उनमें थोड़ा बहुत अन्तर होता है और उनकी व्यंजना अलग अलग होती है।

शब्दों की उपयुक्तता

अतः स्थान और भाव के अनुसार शब्दों का चुनाव करना चाहिये। जो भाव 'गृहिणी' कहने से

प्रकट होता है वह 'ललना' कहने से नहीं। 'गृहिणी' से गृह-प्रबन्ध का भाव सामने आता है, और 'ललना' से प्रेम। जहाँ भोजनादि गृह-प्रबन्ध तथा बच्चों के पालन-पोषण का वर्णन करना हो वहाँ गृहिणी शब्द का प्रयोग करना उचित है, और जहाँ प्रेम का वर्णन करना हो वहाँ ललना रमणी आदि शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। इसी प्रकार लज्जा और ग्लानि का प्रायः एक सा अर्थ है; किंतु लज्जा दूसरों के सम्बन्ध में होती है और ग्लानि अपने संबंध में। जैसे—हमको यह बात कहने में लज्जा आती है। किन्तु जब 'कहने' के स्थान में 'सोचना' लिखा जाय (कहना दूसरों से होता है और सोचना अपने मन में होता है) तब ग्लानि शब्द का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

शब्दों की स्पष्टता

जहाँ तक हो हमको दो अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जहाँ हम सूर्य कह सकते हैं, वहाँ अर्क नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अर्क सूर्य के अतिरिक्त आक के पेड़ को भी कहते हैं। कविता में हम चन्द्रमा को चाहे द्विज कह लें, किन्तु गद्य में उसे चन्द्रमा वा रजनीश कहना ही ठीक है। जिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट न हों उनका व्यवहार नहीं करना चाहिए और न ग्रामीण और प्रांतीय शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। जहाँ तक हो, सुगम और प्रचलित शब्दों का व्यवहार करना उचित है। बड़े-बड़े समासों से भी बचना चाहिए।

शब्दों की शुद्धता

शब्दों की शुद्धता पर सब से अधिक ध्यान देना चाहिए। जहाँ तक बन पड़े शब्दों का विकृत रूप न रखना चाहिए। जो शब्द जैसा लिखा जाता है उसको वैसा ही लिखना वाञ्छनीय है। यद्यपि बहुत से शब्दों का रूप स्थिर नहीं है तथापि इस संबंध में बहुमत का अनुकरण करना चाहिए; विशेषकर जब कि वह

बहुमत व्याकरण के नियमों के अनुकूल हो, जैसे संवत् कई प्रकार से लिखा जाता है—कई लोग संवत् लिखते हैं और कई लोग सम्वत् लिखते हैं; किन्तु संवत् लिखना अधिक उपयुक्त है क्योंकि व्याकरण के अनुसार यही उसका शुद्ध रूप है। उदाहरणार्थ कुछ शब्दों के अशुद्ध और शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं :—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आधीन	अधीन	आवश्यक्ता	आवश्यकता	उपरोक्त	उपर्युक्त
ग्रहस्थ	गृहस्थ	गृहण	ग्रहण	सन्मुख	सम्मुख
एकत्रित	एकत्र	दुरावस्था	दुरवस्था	महत्व	महत्त्व
फाल्गुण	फाल्गुन	बृज	ब्रज	स्मर्ण	स्मरण

यदि फारसी के शब्दों का प्रयोग किया जाय तो उनका भी ठीक रूप रखना चाहिए। 'जरा' न लिख कर ज के नीचे बिन्दी लगा कर 'ज़रा' लिखना ठीक होगा। इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी शब्दों के बहुवचन आदि हिन्दी-व्याकरण के अनुसार बनाये जायँ। 'बाशिंदगान', 'मेहमानान' न लिख कर 'बाशिंदों' और 'मेहमानों' लिखना ठीक होगा। इसी प्रकार 'स्कूल्स' न लिख कर 'स्कूलों' लिखना चाहिये।

जहाँ तक हो कोमल और मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

शब्दों का माधुर्य

जहाँ भयंकरता दिखानी हो वहाँ की बात दूसरी है, नहीं तो टवर्ग के कर्णकटु और संयुक्त वर्णों से भरे हुए शब्दों का कम प्रयोग करना चाहिए।

अनुप्रासयुक्त शब्दों का प्रयोग भी रचना में सुन्दरता ले आता है, किन्तु इसमें 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' वाले नियम का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

वाक्य-रचना

वाक्य व्याकरण के अनुकूल होने चाहिएँ; विराम चिह्नों का खूब ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक हो वाक्य छोटे हों। वाक्यों को अधिक लंबा या उलझा हुआ बना देना ठीक नहीं है।

अलंकार

थोड़े बहुत अलंकार भाषा को चमत्कारपूर्ण बना देते हैं, किन्तु अलंकारों की भरमार अच्छी नहीं। जो अलंकार विचार के प्रभाव में आ जावें उनको रक्खा जावे, किन्तु यत्न के साथ अलंकारों को लाना भावों को क्लिष्ट बना देता है। जो अलंकार ठीक न निभाया जा सके उसे न रखना चाहिए।

मुहावरे

जहाँ तक हो भाषा मुहावरेदार हो। रचना में कहीं-कहीं लोकोक्तियों के प्रयोग से रचना का सौंदर्य बढ़ जाता है*। कहीं-कहीं प्रसिद्ध कवियों की प्रसिद्ध सूक्तियाँ भी दे देना अच्छा होता है। इसके लिए सूक्ति-सुधा, कविता-कौमुदी आदि ग्रन्थों का पढ़ना उपयोगी होगा।

हास्य

हास्य रचना में जान डाल देता है। उसके कारण जी ऊबने नहीं पाता। हास्य के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह मर्यादा के बाहर न हो जावे और न वह किसी का जी दुखावे।

संक्षेप में भाषा शुद्ध और मुहावरेदार होनी चाहिए, उसमें सरलता ओज और प्रवाह का होना वाञ्छनीय है। जहाँ तक हो सके शैथिल्य न आने देना चाहिए और पुनरुक्ति आदि दोषों से बचना चाहिए।

---

*लोकोक्तियों और मुहावरों के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए डा० बहादुरचंद कृत 'लोकोक्तियाँ और मुहावरे' नामक पुस्तक देखिए।

वर्णनात्मक निबन्ध

रेल

अठारहवीं शताब्दी से ले कर आज तक अनेक आविष्कार हुए हैं, किन्तु रेल का आविष्कार बड़े महत्त्व का है। इसने मनुष्य की जीवन-यात्रा में बड़ा परिवर्तन कर दिया है। पहले लोग ऊँट, खच्चर, घोड़े, बैलगाड़ी आदि पर एक स्थान से दूसरे को जाते थे। इन साधनों के द्वारा यात्रा में जहाँ महीनों लग जाते थे, वहाँ आराम तो कतई न था। मार्ग में अनेक मुसीबतों और तकलीफों का सामना करना पड़ता था। कभी लुटेरे और डाकू मिलते थे, तो कभी शेर बाघ आदि हिंस्र जन्तुओं का भय रहता था। यात्रा में अधिक समय लगने से खर्च भी बेतहाशा होता था। लेकिन आज यात्री महीनों का सफर दो एक दिन में और सप्ताहों की यात्रा कुछ घंटों में बड़े आराम से पूरी कर लेता है। सर्दी, गर्मी और वर्षा उसकी यात्रा में बाधक नहीं होतीं। न सहस्रों सिपाही साथ ले जाने पड़ते हैं और न भारी खर्च ही करना पड़ता है। ४-५ रुपये में दिल्ली या जालंधर से हरद्वार पहुँच जाते हैं। हरद्वार, प्रयाग, काशी जैसे तीर्थों की यात्रा करें या दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे बड़े शहर देखें, सब कुछ दिनों और कुछ पैसों की मार है।

रेल का महत्त्व

रेल के आविष्कार का इतिहास बड़ा मनोरंजक है। भाप से काम लेने का विचार बहुत पुराना था। आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पहले मिस्र के विद्वान् हीरो ने भाप की शक्ति से देवता की मूर्ति के सिर पर पानी के फव्वारे की तरह शराब

रेल का आविष्कार

छिड़कने का यंत्र बनाया था। लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष तक उसके आविष्कार में उन्नति न हुई। सन् १६०१ में पोर्ता नामक इतालवी ने भद्दा सा भाप का ऐंजिन बनाया। १६२० में एक और इतालवी ब्रांका ने उसमें सुधार किया। १६५५ में लार्ड वार्सेस्टर ने और फिर कैप्टेन सेवरी नामक अंगरेज़ों ने इनमें सुधार किये। १७१२ में न्यूकोमन नामक अंग्रेज ने उन ऐंजिनों में सुधार कर ऐसा ऐंजिन बनाया जो खानों के भीतर से पानी उलीचने वाले पंपों को चला सकता था। १७६९ में ज़ेम्स वाट नामक अंगरेज़ ने नये ढंग का भाप का ऐंजिन बनाया। इन ऐंजिनों में भाप से पिस्टन की गति केवल ऊपर नीचे होती थी। १७८१ में जेम्स वाट ने ऐसा तरीका ईजाद किया जिससे पिस्टन की गति चक्करदार भी हो सके। अब भाप के ऐंजिन का प्रयोग अनेक यन्त्रों को चलाने में होने लगा। अंत में १८१८ में स्टीफनसन नामक अंग्रेज़ ने रेल की पटरी पर चलनेवाला भाप का ऐंजिन बनाया। पहले इससे कोयले से भरे डिब्बे खानों से लोहे के कारखानों तक पहुँचाये जाते थे। फिर उसने आदमियों को ढोने के लिए रेलगाड़ी बनाई। २७ सितम्बर १८२५ को पहली सवारी गाड़ी स्टाक्टन और डारलिंगटन के बीच चली। १८३० में उसने "मनचस्टर से लिवरपूल" नामक रेल चलाई। यह १५ मील प्रति घंटा की चाल से चलती थी। इस रेलगाड़ी को देखने की सब को उत्सुकता थी। मनुष्य उस समय इसके संचालन को दैवी प्रेरणा का फल समझते थे। इंगलैंड की रानी विक्टोरिया ने इस नवीन आविष्कृत सवारी में यात्रा करके अपना अहोभाग्य माना था।

उस समय की रेलगाड़ियाँ बड़े भोंडे ढंग की थीं। किराया भी अधिक था। धीरे-धीरे इनमें अधिक उन्नति होने लगी और अब तो ये ६० मील प्रति घंटे से भी अधिक तेज़ चलने लगी हैं। अब रेलों का

प्रचार सब देशों में हो गया है। भारतवर्ष में सन् १८५१ में रेल की पहली सड़क बनाई गई। तब से समस्त देश में रेल की लाइनें जाल की तरह फैल गई हैं। बंबई और कलकत्ता जैसे विशाल नगरों से ले कर छोटे-छोटे गाँवों तक में रेल की सड़कें बनी हुई हैं; जिनसे समस्त देश एक सूत्र में बँध गया है। भारतवर्ष में उत्तर, पूर्वोत्तर, पूर्वोत्तर-सीमान्त, पूर्व, दक्षिण पूर्व, मध्य, पश्चिम और दक्षिण—ये ८ रेल लाइनें हैं।

रेलगाड़ियाँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं—एक माल ढोने वाली, दूसरी सवारी ले जाने वाली। सवारी ले जाने वाली गाड़ियों में भी

रेलगाड़ियों के प्रकार

चाल के भेद से डाकगाड़ी, ऐक्सप्रेस और सवारी गाड़ी आदि कई प्रकार हैं। डाकगाड़ी की चाल बहुत तेज होती है और वह बहुत कम स्टेशनों पर ठहरती है। ऐक्सप्रेस गाड़ी की चाल डाकगाड़ी से कुछ कम होती है, और डाकगाड़ी से कुछ अधिक स्टेशनों पर ठहरती है। साधारण सवारी गाड़ी की चाल इन दोनों से कम होती है और वह छोटे बड़े प्रत्येक स्टेशन पर ठहरती है। सवारियों के आराम के हिसाब से रेल के डिब्बों की चार श्रेणियाँ होती हैं—वातानुकूलित, पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, और तीसरा दर्जा। आराम के हिसाब से किराया भी अधिक खर्च करना पड़ता है। कई गाड़ियों में खाना खाने के डिब्बे भी साथ लगे रहते हैं, जिनमें बैठ कर यात्री आराम से भोजन कर सकते हैं।

रेलगाड़ियों में डिब्बों के आगे एक ऐंजिन लगा रहता है। यह ऐंजिन धुएँ के बादल उगलता हुआ वायु के वेग से सब को खींच ले जाता है। कभी कभी जब डिब्बे अधिक होते हैं, या चढ़ाई होती है तो पीछे भी एक ऐंजिन लगा दिया जाता है।

जिस स्थान पर रेलगाड़ी खड़ी होती है उसे स्टेशन कहते हैं। बड़े बड़े स्टेशनों पर ऐंजिनों में कोयला और पानी भरा जाता है, और कहीं-कहीं पर ऐंजिनों, ड्राइवरों और गार्डों की बदली भी होती है। बड़े-बड़े स्टेशनों पर प्रायः सभी आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। गाड़ी आने से पूर्व प्लेट-फार्म पर यात्रियों की खूब चहल-पहल रहती है।

रेलवे स्टेशन

रेलों से लाभ अधिक और हानि कम है। रेल के जारी होने से देश के सुदूरवर्ती नगर परस्पर मिल गये हैं। दक्षिण के सुदूर देश और समुद्रतटवर्ती बन्दरगाहों से ले कर उत्तर में हिमालय की तराई तक के सब मैदान रेलमार्ग द्वारा सम्बद्ध हो गये हैं। इलाहाबाद के अमरूद, नागपुर के सन्तरे, कश्मीर के सेव और बंबई तथा अहमदाबाद के बढ़िया कपड़े, बंगाल का कोयला और धारीवाल के ऊनी कपड़े अब भारत के प्रत्येक शहर में रेलों की वजह से ही मिलते हैं। कच्चा माल बड़े शहरों में जल्दी मिल जाने के कारण उद्योग धन्धे बहुत बढ़ गये हैं। अकाल के समय रेल के द्वारा बहुत सहायता मिलती है। मनुष्यों तथा जानवरों के लिए अनाज और चारा एकदम पहुँच जाता है। रेल ने भारत के विभिन्न प्रान्त वालों को आपस में मिला कर एकदेशीयता और परस्पर प्रेम पैदा कर दिया है। सामाजिक और राजनैतिक विकास में भी रेलों ने बहुत सहायता पहुँचाई है। किसी भी सरकार के लिए रेल बहुत लाभ-दायक है। देश में अशान्ति और विप्लव को भी सरकार रेलों पर एक-दम सेना या पुलिस भेज कर शान्त कर सकती है। रेल द्वारा डाक का भी प्रबन्ध आसानी से हो जाता है। मेलों में सब लोग एकदम रेलों की सहायता से पहुँच जाते हैं। जब देश का विभाजन हुआ, तब पश्चिमी पंजाब से लाखों देशवासी रेलों के द्वारा बहुत कम समय में

पूर्व पंजाव में आ गये थे। वस्तुतः रेलें राजा-प्रजा, अमीर-गरीव, गृहस्थ-साधु और व्यापारी या नौकर सभी को वहुत लाभ पहुँचाती हैं।

हवाई जहाज

मनुष्य वहुत काल से उड़ने का स्वप्न देखता चला आया है। उसने जल और स्थल पर वहुत काल से विजय प्राप्त कर ली थी, किन्तु आकाश अभी उसके लिए एक प्रकार से दुर्गम ही रहा था। यद्यपि प्राचीन काल में हम वायुयानों का वर्णन पढ़ते हैं तथापि हमको यह नहीं मालूम कि वे किस प्रकार के होते थे; वे किस तरह चलते थे। यदि प्राचीन काल में यह कला थी भी तो वहुत काल से लोग इसे भूल गये थे। देवताओं के विमानों तथा कथाओं के उड़न-खटोलों का एवं परियों के इन्द्रलोक में आने जाने का वर्णन पढ़ और सुन कर मनुष्य का मन गगन-विहारी वनने के लिए लालयित रहता था। कभी-कभी लोग पतंग को उड़ते हुए देखते थे। उसके अतिरिक्त हलकी हवा से भरे हुए गुव्वारे भी उड़ते दिखाई पड़ते थे। ये गुव्वारे क्रमशः बड़े बनने लगे और उनमें हाइड्रोजन आदि हलकी गैसों का प्रयोग होने लगा, जिससे वे अग्नि और धुएँ पर निर्भर न रह कर चिरकाल तक आकाश में स्थित रहने के योग्य वन गये। मनुष्य उनमें वैठ कर उड़ने भी लगे; किन्तु गुव्वारों में मनुष्य वायु के अधीन था; जिधर वायु ले गई उधर ही वे चले गये। फिर गुव्वारा सहज में उतरता भी न था, उससे कूदने के लिए छाते लगाने पड़ते थे। इन कठिनाइयों को देख कर वैज्ञानिक लोग इस वात के उद्योग में लग गये कि वे ऐसे यान बनावें जो यन्त्र-बल के कारण वायु के अधीन न रहें अर्थात् उनकी गति की दिशा और उनका क्रम

उड़ने का इतिहास

इच्छानुकूल बदला जा सके। गति को नियन्त्रित करने के लिए एक विशेष प्रकार की संचालक शक्ति की आवश्यकता थी। रेल और जहाजों में वाष्प की संचालनशक्ति का प्रयोग होता था किन्तु वाष्प के ऐंजिन हलके नहीं बन सकते थे। वाष्पशक्ति से चलने वाली एक हवाई नाव बनाई भी गई थी, किन्तु वह सफल न हुई। इन्हीं दिनों में पैट्रोल-ऐंजिनों का आविष्कार हुआ था। ये हलके होने के कारण सुगमता से हवाई यानों में रक्खे जा सकते थे। सन १९०३ में एक उड़ाकू पहली वार पैट्रोल का ऐंजिन लगा कर थोड़ी देर उड़ा था।

वर्तमान वायुयानों के उड़ने का सिद्धान्त तथा उनकी बनावट

शुरू शुरू में हवाई जहाजों में गैस भी रहती थी और ऐंजिन भी रहता था, किन्तु उड़ने वाले वैज्ञानिकों ने चिड़ियों के उड़ने का विशेष अध्ययन कर इस बात का निश्चय किया कि उड़ने के लिए हवा से हलका होना आवश्यक नहीं है। चिड़ियाँ अपने परों को फटफटा कर हवा में वेग उत्पन्न कर लेती हैं और वह वेग उनको ऊपर उठाये रहता है। जहाजां और मोटर-नौकाओं के पंखे पानी में पीछे की ओर से वेग उत्पन्न कर उन्हें आगे बढ़ाते हैं। जो चीज़ ज़रा ऊपर को उठी होती है वह पीछे से वेग मिलने पर ऊपर की ओर उठती चली जाती है। चिड़ियों का मुँह भी ऊपर को उठा रहता है। इसी सिद्धांत के अनुसार हवाई जहाजों में केवल दो पहिए होते हैं और वे इस प्रकार रक्खे जाते हैं कि हवाई जहाज मोटर की शक्ति से थोड़ी दूर स्थल पर चल कर हवा में ऊपर उठने लगते हैं। अब तो हवाई जहाजों की गति का पूरी तौर से नियंत्रण ही नहीं होने लगा है, वरन् वे नट की तरह आकाश में कलाबाजी भी खाने लगे हैं। इन पहियों के ऊपर हवाई जहाज का शरीर होता है जो मछली या लौकी के आकार का होता है। इसी

लौकी या मछली के आकार वाले शरीर में दो पंख लगे होते हैं। और अब तो हवाई जहाज वीसियों किस्म के वन गये हैं। पिछले युद्ध में शत्रु के प्रदेश पर जा कर वम वर्षा के लिए, वहाँ झपट्टा मार कर नीचे के लोगों पर आक्रमण करने के लिए अथवा अन्य प्रकार की कार्रवाइयों के लिए नये से नये हवाई जहाज वनाये गये हैं। घंटे में ४००-५०० मील चलने वाले हवाई जहाज वन चुके हैं। वैज्ञानिक लोग तो अब वायुयानों की सहायता से चन्द्रलोक तक पहुँचने का स्वप्न देखने लगे हैं।

वायुयान के लाभ

वायुयान के अनेक लाभ हैं। इसकी गति मोटर और रेल की गति से अधिक तेज़ होती है। वायुयान तीन चार सौ मील प्रति घंटे की गति से चल सकते हैं। इनके लिए रास्ते में कोई रुकावट नहीं होती। तीर की तरह सीधा जाने के कारण दूरी को और भी जल्दी तय कर लेते हैं। इनके लिए न सड़क वनवाने की आवश्यकता है और न पुल वँधवाने की। वायुयान के कारण महीनों का सफर हफ्तों का हो गया है। अब विलायत से एक हफ्ते में ही डाक आ-जा सकती है और पार्सल वगैरह भी भेजे जा सकते हैं। वायुयान द्वारा समय की ही वचत नहीं हुई वरन् इसके कारण वहुत से दुर्गम स्थान भी सुगम हो गये हैं। इनके द्वारा वदरी-केदारनाथ जी की यात्रा भी दुर्गम नहीं रही। वायुयान की उपयोगिता वढ़ाने के लिए वेतार के तार का भी साथ ही साथ आविष्कार हो गया था। वेतार के तार द्वारा उसे संसार का भी पता रह सकता है।

युद्ध के क्षेत्र में वायुयान का वहुत उपयोग होने लगा है। अब इसके कारण दुर्ग 'दुर्ग' (जिनमें मुश्किल से जाया जावे) नहीं रहे। खाई भी दुश्मन की अधिक रक्षा नहीं कर सकती। हवाई जहाजों द्वारा शत्रु की सारी सैनिक परिस्थिति का अवलोकन ही नहीं हो सकता वरन्

उसपर ऊपर से बम वर्षा भी की जा सकती है। यह विज्ञान का दुरुपयोग है। जिस प्रकार पहले ज़माने में राष्ट्र अपनी जल-शक्ति पर गर्व करते थे उसी तरह अब वे वायु-शक्ति पर गर्व करने लगे हैं। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में जर्मनी ने हवाई शक्ति के कारण शुरू शुरू में बड़ी विजय पाई और अन्त में इंग्लैंड, अमेरिका तथा रूस की हवाई शक्ति बढ़ जाने से ही जर्मनी की पराजय हुई।

वायुयान के सामाजिक उपयोग भी बहुत हैं। अब मित्रगण एक दूसरों के पास उड़ कर जा सकेंगे और उन्हें पंख न होने की शिकायत करने का अवसर न मिलेगा। डाक भी अब शीघ्रता से आने जाने लगी है। बिगड़ने या सड़ने वाली चीजें अब और भी अधिक शीघ्रता से स्थानान्तर में पहुँचाई जा सकेंगी। अगले कुछ वर्षों में हवाई जहाज का प्रयोग आम कार्यों में बहुत बढ़ जायगा। शायद हवाई जहाज यातायात का सबसे प्रमुख साधन हो जाय।

ताजमहल

परिचय

यद्यपि ताजमहल की गणना संसार के सप्त आश्चर्यों में नहीं है, तथापि संसार की स्थापत्य-कला के इतिहास में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। यदि इसको संसार का आठवाँ आश्चर्य कहें तो असत्य न होगा। मुगल-सम्राट् शाहजहाँ ने यह समाधि-मन्दिर अपनी प्रियतमा मुमताज महल के नश्वर शरीर को एक दिव्य आश्रय देने के लिए बनवाया था। मुमताज महल के संबंध से ही इसका नाम ताजमहल पड़ा। यह एक प्रेमी के हृदयगत शोक की निर्मल प्रस्तर मूर्ति है। वास्तव में यह स्वप्नलोक की सी वस्तु प्रतीत होती है। एक किंवदन्ती भी है कि शाहजहाँ ने इसका नक्शा पहले पहल स्वप्न में

ही देखा था।

यह विशाल समाधि-मंदिर यमुना के तट पर शांत और निस्तब्ध वातावरण में स्थित है। यद्यपि इसका धवल सौध कई मील की दूरी से दिखाई पड़ता है, तथापि इसका पूर्ण सौंदर्य निकट जाने से ही प्रतीत होता है। पर्वत और युद्ध की वार्ता की भाँति यह दूर से ही रम्य नहीं है, वरन् जितना ही इसके निकट जाओ, उतना ही सुन्दर प्रतीत होता है। ताजमहल तक पहुँचने के लिए हमको लाल पत्थर के एक बृहत्काय द्वार में से हो कर जाना पड़ता है। इस पर कुरान शरीफ की आयतें श्वेत पत्थर के अक्षरों में इस अनुपात में लिखी हुई हैं कि ऊपर नीचे के सब अक्षर एक आकार के दिखाई पड़ते हैं। प्रवेशद्वार से निकल कर हम फव्वारों और सर्व के सुन्दर पेड़ों को पार करते हुए इस विशाल प्रासाद की संगमरमर निर्मित चौकी तक पहुँच जाते हैं। जब ज़ीने में हो कर चौकी के ऊपर पहुँचते हैं तो वहाँ हमको एक सुडौल इमारत के तथा उसके चारों कोनों की चार मीनारों के दर्शन होते हैं। वहाँ पहुँचते ही हमको विशालता और सौंदर्य के साथ पुण्य दर्शन मिलते हैं। इसके प्रत्येक दरवाज़े पर कुरान की आयतें काले पत्थर के अक्षरों द्वारा अंकित हैं। इस विशाल भवन का पूर्ण सौंदर्य शरद्-ज्योत्स्ना के आलोक में दिखाई पड़ता है, किन्तु सूर्य के प्रकाश में भी इसके ऊपर के भाग में जड़े हुए दीप्त प्रस्तरखंडों की चमक-दमक मन को आकर्षित कर लेती है। चाँदनी रात में तो ये दीप्त प्रस्तरखंड नभ-मंडल के उज्ज्वल प्रकाशमय नक्षत्रों की प्रतिमूर्ति से प्रतीत होते हैं। भीतर जा कर हम पच्चीकारी के काम के अपूर्व नमूने देखते हैं। ऊपर नीचे सब एक सा काम है। नाना-प्रकार की फूल-पत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। भीतर संगमरमर के जड़ाऊ कटघरे के भीतर दो

वर्णन

सुन्दर कबरें दृष्टिगोचर होती हैं। उस विशाल भवन में प्रतिध्वनि बड़ी देर तक सुनाई पड़ती है। नीचे एक अँधेरी गुफा में असली कबरों के दर्शन होते हैं। वहाँ पूर्ण शांति का साम्राज्य दिखाई पड़ता है।

कहा जाता है कि इस विशाल भवन के निर्माण के लिए भारतवर्ष, फारस तथा इटली के कुशल से कुशल कारीगरों ने काम किया है। १७ वर्ष तक २००० आदमी प्रतिदिन काम करके इस भवन के निर्माण में सफल हुए थे।

ताजमहल भारतीय शिल्प-कला का अपूर्व उद्योग है। ३०० वर्ष के ऋतु-संबंधी परिवर्तनों तथा मेंह और धूप को सहता हुआ यह मन्दिर आज तक नया सा प्रतीत होता है। यद्यपि कोई भी सांसारिक पदार्थ काल के प्रभाव से नहीं बचता, तथापि इस भवन के सम्बन्ध में काल की गति स्थगित-सी हुई प्रतीत होती है। यह सुन्दर भवन चिरकाल तक मुगल-साम्राज्य के ऐश्वर्य तथा उस समय के कला-कौशल का परिचय देता रहेगा।

उपसंहार

वसन्त ऋतु

हिंदुओं के काल-वर्णन में वर्ष के छह विभाग किये गये हैं, जो ऋतु कहलाते हैं। सूर्य के पृथ्वी से निकट वा दूर होने के कारण पृथ्वी पर सर्दी और गरमी के जो परिवर्तन होते हैं, उन्हीं के आधार पर ऋतुओं का विभाग किया गया है। वसन्त ऋतु सबसे पहली ऋतु मानी गई है। वसन्त से ही वर्ष का आरंभ होता है। वसन्त ऋतु को ऋतुराज भी कहते हैं।

इस ऋतु में न अधिक सर्दी होती है और न गरमी। शिशिर के बीत जाने के बाद प्रकृति का एक प्रकार से पुनर्जन्म सा होता है।

वृक्ष पतझड़ में अपने पत्तों का त्याग करते हैं, उसके पुण्य-फल-स्वरूप वे वसन्त में नवीन कोंपलें धारण कर पुष्पों और मंजरियों से विभूषित हो जाते हैं। ये पुष्प और मजरियाँ केवल शोभा के ही साधन नहीं होते, वरन् इनमें भावी फलों की शुभाशा भी रहती है। इस प्रकार इस ऋतु में सौंदर्य और उपयोगिता का एक अपूर्व आनन्दमय समन्वय हो जाता है। इसमें प्रकृति अपना नवीन कलेवर धारण कर लेती है। चारों ओर नवीन जीवन का संचार सा दिखाई देने लगता है। सरसों के फूलों के कारण शस्य-श्यामला पृथ्वी पीत-वसना हो बड़ी सुहावनी मालूम पड़ने लगती है। मधु से भरे आम के बौरों का सौरभ केवल मधुपों को ही नहीं, वरन् मनुष्य को भी मदोन्मत्त कर देता है। कोकिल की मधुरिमा-मयी कुहू-कुहू अपने संगीत में प्रकृति के हर्षोल्लास को प्रकट करती है, मानो वह प्रकृति के फलवती होने पर अपने संगीत द्वारा उसे बधाई देता सा प्रतीत होता है। चारों ओर अपूर्व शोभा की सामग्री दिखाई पड़ती है। बढ़ती हुई लताएँ बड़े-बड़े पेड़ों का आश्रय ले आनन्द से लहलहाने लगती हैं।

वसंत ऋतु का प्राकृतिक हासोल्लास मानव-हृदय पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। शीत और उष्ण की समता के कारण मनुष्य में अपूर्व स्फूर्ति आ जाती है, जो प्रकृति की तत्कालीन स्फूर्ति के अनुरूप होती है और प्रकृति का एक प्रकार से तादात्म्य हो जाता है। सारी प्रकृति और मानव-समाज में उत्साह का भाव व्याप्त हो जाता है। मनुष्य अपने उत्साह में नाना प्रकार के खेल-कूद करता है जो होली के अवसर पर अपने पूर्ण विकास को पहुँच जाते हैं। प्राचीन काल में होली का उत्सव वसंतोत्सव के नाम से ही प्रख्यात था। इसमें नाना प्रकार के नाच गान होते थे और नये-नये नाटक भी खेले जाते

थे। यह समय काव्यादि के लिए बड़ा उपयोगी समझा जाता है और इसलिए वसंतपंचमी पर सरस्वती-पूजा हुआ करती थी। बंगाल में यह सरस्वती-पूजा अब भी बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है।

वसंत ऋतु का नाम कुसुमाकर भी है। प्रकृति के पुष्पित होने के साथ-साथ इस ऋतु की अलौकिक शक्ति से सब चीजें कुछ का कुछ रूप धारण कर लेती हैं और उनके साथ हमारा मन भी कुछ और ही हो जाता है। देखिए, एक कवि ने इस सम्बन्ध में क्या ही सुन्दर उक्ति कही है :—

औरे भाँति कोकिल चकोर ठौर-ठौर बोलें
औरे भाँति सब पपीहानन के ह्वै गये।
औरे भाँति पल्लव लिये हैं वृन्द वृन्द तरु
औरे छवि पुंज कुंज कुंजन उने गये॥
औरे भाँति शीतल सुगन्ध मन्द डोलै पौन
'द्विज देव' देखत न ऐसे पल ह्वै गये॥
औरे रति औरे रंग औरे छन औरे संग
औरे बन औरे छन औरे मन ह्वै गये॥

वर्षा वर्णन

वसंत ऋतु के बाद सूर्य बिलकुल उत्तरायण हो जाता है, इस कारण भीषण गरमी पड़ती है। उस समय पृथ्वी जलने लगती है, पेड़-पौधे झुलस जाते हैं, पशु-पक्षी आदि सब चराचर व्याकुल हो जाते हैं। गर्मी की भीषणता से नदी-नाले, झील-पोखरे और समुद्र सूखने लगते हैं। यही जल वाष्प का रूप धारण कर आकाश में उड़ जाता है और फिर ठंडक मिलने से यह वाष्प बादल बन कर मेंह के रूप में

बरसने लगता है। जब नीले-नीले मेघ गर्जन तर्जन करते हुए अपने जीवन (जल) द्वारा सब जंतुओं को नया जीवन देने लगते हैं तो वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाती है और जीवन शब्द का जल अर्थ सार्थक हो जाता है।

साधारण गणना में वर्षा ऋतु आषाढ़ से क्वार (आश्विन) तक रहती है। इस समय समुद्र से वार्षिकी मेघरेखा (मानसून) उठती है। यह मेघरेखा उत्तर की ओर बढ़ने लगती है; और हिमालय पर्वत से टकरा कर बरस जाती है। उस समय पहाड़ों की बड़ी मनोहारिणी शोभा होती है। बादल मनुष्यों के बीच में भेड़ बकरी के समान चलते हुए दिखाई पड़ते हैं और पत्थरों से टकरा कर जल के रूप में बरस जाते हैं। इन चार महीनों में खूब मूसलाधार वर्षा होती है। कभी-कभी अनेक दिनों तक मेंह की झड़ी सी लगी रहती है। दिन भी रात्रि के समान दीखने लगता है। सूर्य के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। समस्त पृथ्वी जलमग्न हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र में बाढ़ ही आ गई हो। वर्षा के बाद नील गगन-मंडल में इन्द्रधनुष की छटा बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती है।

पानी पड़ने के कारण चारों ओर हरियाली छा जाती है। तरह तरह के नये पौदे उगते हैं। वृक्षों और लताओं की बहार बड़ी सुखद और मनोहारिणी होती है। बागों, खेतों और हरे भरे मैदानों की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। काले-काले फलों से लदे हुए जामुन के पेड़, मीठे रस-भरे हरे-पीले फलों के भार से झुके हुए आम के वृक्ष तथा नींबू और करौंदे की खुशबूदार झाड़ियाँ बड़ी भली प्रतीत होती हैं। ये सब वृक्ष लताएँ और झाड़ियाँ पक्षियों के कलरव से सजीव हो जाती हैं। घनानन्दी मयूर की 'मेहूँ मेहूँ', स्वाति बिंदु के अनन्य-प्रेमी पपीहे

की 'पीउ पीउ' की पुकार और आम के वृक्ष पर बैठने वाले कोकिल की 'कुहू कुहू' ध्वनि अपूर्व संगीत उत्पन्न कर देती हैं। आकाश में बगुलों की पंक्तियाँ बिना द्वार के तोरण (वन्दनवार) सी जान पड़ती हैं। पृथ्वी पर वीर वधूटियाँ बिखरे हुए माणिक-खंडों की भाँति दिखाई पड़ती हैं।

पावस (वर्षा ऋतु) की रात का दृश्य बड़ा डरावना होता है। रात घोर अंधेरी होती है। झींगुरों की झंकार और मेंढकों की टर्र-टर्र कानों को फाड़े डालती है। बीच-बीच में बिजली की कड़क दिल को दहला देती है और उसकी चमक आँखों को चौंधिया देती है। मेघों का गर्जन तोप के धड़ाके के सदृश प्रतीत होता है। बड़े वेग से बहती हुई अपने किनारों को काटती और वृक्ष-समूहों को उखाड़ती हुई नदियाँ बड़ा भीषण शब्द करती हैं।

लाभ

मनुष्य-समाज को वर्षा ऋतु से अनेक लाभ हैं। कृषि-प्रधान भारतवर्ष का तो वर्षा ही आधार है। वर्षा से मनुष्य के लिए अन्न ही पैदा नहीं होता वरन् पशुओं के लिए चारे की इतनी अधिकता हो जाती है कि वर्ष भर के लिए यथेष्ट होता है। कहीं कहीं वर्षा के पानी को बाँध इत्यादि से रोक कर उपयुक्त लाभ उठाया जाता है। मारवाड़ प्रभृति स्थानों में इस पानी को इकट्ठा कर पीने के काम में लाते हैं। गरमी के भीषण ताप से लोगों में जो सुस्ती समा जाती है, वह वर्षा के आगमन से दूर हो जाती है। वर्षा के मनोरम दृश्य मन पर अच्छा प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

हानि

यद्यपि वर्षा ऋतु हमारे लिए बड़ी उपयोगी है, इस समय वायु के प्रकोप से हैज़ा, मलेरिया, मौसमी बुखार आदि भयंकर रोग पैदा होते हैं जिनमें अनेकों मनुष्य काल-कवलित हो जाते हैं। कभी-कभी भीषण वर्षा से बाढ़ आ जाती है और

गाँव, घर और चौपाये बह जाते हैं; सड़कें कट जाती है; रेलों के पुल टूट जाते हैं और बहुत-सा कार्य स्थगित हो जाता है। कभी अत्यधिक वर्षा से खेती मारी जाती है; मकान गिर पड़ते हैं। विजली के प्रकोप से कभी-कभी अनेक मनुष्यों की अकाल मृत्यु हो जाती है। सड़कों पर जल और कीचड़ होने के कारण घर से वाहर निकलना या एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना वड़ा कठिन हो जाता है। खेल-कूद के लिए भी समय कम मिलता है। रात को डाँस और मच्छरों के मारे नींद नहीं आती। सच तो यह है कि जहाँ वर्षा से सुख हैं, वहाँ दुःख भी हैं; निर्दोपिता कहीं नहीं मिलती।

दशहरा

दशहरा शरद्-ऋतु के प्रधान त्योहारों में से है। यह आश्विन (क्वार) शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। इसको विजया-दशमी भी कहते हैं। यद्यपि यह हिंदुओं का जातीय-त्योहार है और इसको सभी हिन्दू बड़े उत्साह से मनाते हैं, तथापि इसका क्षत्रियों से विशेष सम्बन्ध है।

प्राचीन भारत में वर्षा-ऋतु यात्रा के लिए उपयुक्त ऋतु नहीं मानी जाती थी। प्रायः साधु-महात्मा, धर्मोपदेशक, वणिक्-व्यापारी, राजा-महाराजा वर्षा ऋतु को अपने स्थान पर ही विताया करते थे। साधु लोगों का कोई विशेष स्थान न होने के कारण वे किसी अच्छे स्थान पर 'चातुर्मास' करते थे। बुद्धदेव के चातुर्मासों का बौद्ध-ग्रन्थों में वर्णन आता है। अब भी कुछ साधु चातुर्मास मनाते हैं। वर्षा ऋतु बीत जाने और शरद् ऋतु आ जाने पर ही व्यापारी लोग अपना माल लाद कर

दशहरा मनाये जाने का कारण

बाहर यात्रा के लिए जाया करते थे। इसी प्रकार क्षत्रिय लोग भी इस शुभ-दिवस पर अपनी विजय-यात्रा के लिए निकला करते थे। यह दिवस उत्साह का दिवस था। शरद्-ऋतु में विपत्ति रूपी बादल की काली-काली घटाएँ विलीन हो जाती हैं और शुभ्रज्योत्स्नामय निरभ्र (बादल रहित) स्वच्छ गगन-मंडल मनुष्य के हृदय में आशा का संचार करने लगता है। इन्हीं प्राकृतिक कारणों से यह दिन शुभ माना गया है। इस दिन जो कार्य आरम्भ किया जाता है वह विजय-श्री से विभूषित होता है। श्रीरामचन्द्रजी ने वालि को मार कर वर्षा ऋतु के चार मास प्रस्रवण पर्वत पर विताये थे। शरद् ऋतु में कार्तिक लगने पर उन्होंने हनुमान आदि को सीता की खोज के लिए भेजा था। फिर रावण को मार कर चैत्र शुक्ला नवमी को अयोध्या वापिस आये थे। परन्तु न जाने कैसे यह मानने की परंपरा चल पड़ी है कि इसी दशहरे के दिन श्रीरामचन्द्र ने लंका के राजा रावण पर विजय पाई थी। इसलिए यह त्योहार विजया-दशमी के नाम से प्रख्यात है।

दशहरा रामलीला का अंतिम दिन होता है। इस रोज बड़ी धूम-धाम के साथ रावण-वध का अभिनय किया जाता है। उसमें रावण की बृहत्काय कागज की मूर्त्ति को जलाया जाता है। उसमें गोले और आतिशबाज़ी भर दी जाती है, उनमें आग लग जाने से ज़ोर के धमाके होते हैं और आग की रंग-बिरंगी चिनगारियाँ निकलती हैं। इसके अतिरिक्त आतिशबाज़ी का प्रदर्शन भी किया जाता है। बड़े शहरों में दशहरे से पहले १५ दिन रामलीला की बड़ी धूम-धाम रहती है। कहीं मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के जीवन-चरित्र का बड़े आकर्षक रूप से अभिनय किया जाता है और उसमें संगीत के साथ रामायण का पाठ होता है। रामलीला देख कर भक्त लोगों के हृदय में भक्ति-भावना का

उद्रेक हो जाता है और वे बड़े प्रेम और उत्साह के साथ श्रीरामचन्द्र जी की जय बोलते हैं। रामचन्द्र से दशहरे का सम्बन्ध केवल पंजाब और उत्तर प्रदेश में ही माना जाता है। राजस्थान में दशहरा शक्ति-पूजा का त्योहार माना जाता है। इस दिन शस्त्रों की पूजा होती है। मिथिला और बंगाल में आश्विन शुक्ल पक्ष में दुर्गा की पूजा होती है। पहले नौ दिन नवरात्र कहे जाते हैं। इन दिनों में विविध प्रकार से देवी की पूजा के बाद दशमी को अन्तिम पूजा करके प्रतिमा विसर्जित की जाती है। तदनन्तर लोग एक दूसरे से मिलते हैं। इसी दशमी को देवी ने महिषासुर पर विजय पाई थी, इसलिए इसे विजया दशमी कहते हैं।

उपयोगिता

इस त्योहार का बड़ा जातीय महत्त्व है। यह दिवस उस समय की स्मृति दिलाता है, जब आर्य जाति अपनी सभ्यता का अन्य देशों में प्रसार कर रही थी और जिस दिन एक आर्य राजा ने सब से प्रबल अनार्य राजा पर विजय प्राप्त कर आर्य-साम्राज्य की नींव रखी थी। वे भारत की समृद्धि के दिन थे। उन दिनों की पुण्य-स्मृति से हम में जातीय-गौरव बढ़ता है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी की पवित्र लीलाओं का अनुकरण करने से हमारे हृदय में उनकी-सी पितृ-भक्ति और त्याग की भावना पैदा होती है। लक्ष्मण और भरत के से भ्रातृ-प्रेम, सती सीता के से पतिव्रत धर्म और वीर हनुमान के से उत्साह और सेवाभाव से हमें प्रोत्साहन मिलता है। इस त्योहार के मनाने से हमारे हृदय में वीर पूजा की भावना दृढ़ होती है और हमारा जातीय जीवन संगठित होता है।

———

दीपावली (दिवाली)

दीपावली हिन्दुओं के मुख्य त्योहारों में से है। वह कार्तिक की अमावस्या की रात्रि में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस समय तक खरीफ की फसल पक कर किसानों के घर में आ जाती है और रबी की फसल के लिए बीज बोने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। दीपावली का त्योहार मना कर किसान लोग अपना हर्ष प्रकट करते हैं। व्यापारी लोगों के लिए दीपावली ही से नववर्ष का आरम्भ होता है। प्राचीन काल में जब रेल आदि की सुविधा न थी तब व्यापारी लोग प्रायः दिवाली या दशहरे ही से माल खरीदने के लिए बाहर जाया करते थे। इस त्योहार का लक्ष्मी-पूजा से विशेष सम्बन्ध है, अतएव वैश्य लोग इसे बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। प्रचलित भ्रांत धारणा के अनुसार दिवाली ही के दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी चौदह वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या पधारे थे। उनके स्वागतार्थ अवध-वासियों ने जो उत्सव मनाया था उसी हर्षोल्लास की आवृत्ति हम इस त्योहार में देखते हैं। जैनियों के अनुसार उनके अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर जी ने इसी दिन मोक्षश्री प्राप्त की थी। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का भी देहावसान इसी दिन हुआ था। बंगाली लोग इस दिन काली की पूजा करते हैं। यह त्योहार चाहे किसी कारण मनाया जाय, किन्तु है बड़े महत्त्व का। यह शरद् ऋतु का प्रधान त्योहार है। इस दिन दीपावलियों के प्रकाश से अमावस्या की अँधेरी रात्रि भी आलोकमयी बन जाती है, इस कारण यह त्योहार दीपावली [दीप + अवली] के नाम से प्रख्यात है।

दीपावली मनाये जाने का कारण

दीपावली के कुछ दिन पहले लोग अपने घरों की सफाई करते

हैं, उन्हें, लीप-पोत कर साफ-सुथरा कर लेते हैं। इसके बाद मकानों और दुकानों को झाड़ फानूस और चित्र आदि से सजाते हैं। दिवाली का उत्सव पाँच दिन रहता है। दो दिन पहले 'धन-तेरस' का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन बरतन बेचने वाले दुकानदार, मिठाई बनाने वाले हलवाई और मिट्टी के खिलौने बेचने वाले कुम्हार अपनी-अपनी वस्तुओं को बाजारों में बड़ी सुन्दरतापूर्वक सजा कर रखते हैं। इस दिन किसी बरतन का खरीदना शुभ समझा जाता है, इस कारण सैकड़ों मनुष्य बाजारों में बरतन, खिलौने और मिठाई खरीदते हुए दिखाई देते हैं। धनतेरस की रात्रि को बहुत से स्थानों में खजाने की पूजा हुआ करती है।

दीपावली किस प्रकार मनाई जाती है

दूसरे दिन 'नरक चौदस' या छोटी दिवाली मनाई जाती है। श्रीकृष्ण जी द्वारा नरकासुर के वध के कारण यह दिवस 'नरक चतुर्दशी' के नाम से प्रख्यात हुआ। अपने-अपने घरों की भीतरी तथा बाहरी गंदगी को दूर कर देना एक प्रकार से 'नरकासुर' का ही वध है। इसी दिन विष्णु भगवान् ने नृसिंहावतार धारण कर अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी और संसार को एक बड़े राक्षस [हिरण्यकशिपु] के त्रास से बचाया था।

तीसरे दिन अमावस्या होती है। यह दीपावली महोत्सव का प्रधान दिवस है। रात्रि के समय लक्ष्मी-पूजा के पश्चात् लोग अपने घरों को दीप-मालिकाओं द्वारा सुसज्जित करते हैं। शहरों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ प्रकाश से जगमगा उठती हैं। अमावस्या की घोर अन्धकारमयी निशा भी पूर्णिमा की छटा धारण कर लेती है। प्रेम और सहयोगपूर्ण उद्योग अँधेरे में भी प्रकाश कर देता है। इस अवसर पर लोग अपने सम्बन्धियों तथा इष्टमित्रों को अपने घर पर आमन्त्रित

कर उनके साथ आमोद-प्रमोद करते हैं। बहुत से लोग अपने बन्धु-बान्धवों के घर पर ही मिठाई और पकवान भेज देते हैं। बच्चों को तसवीरें और खिलौने उपहार स्वरूप दिये जाते हैं। अभ्यागतों को भी उत्तम-उत्तम भोजन तथा खील-बताशे बाँट जाते हैं। कहीं-कहीं गीत-वाद्य की भी व्यवस्था रहती है। इस प्रकार सारी रात नहीं तो आधी रात तक तो खूब ही चहल पहल रहती है। बहुत से लोग रात्रि के जागरण को एक धार्मिक कार्य समझते हैं और किसी कार्य में लगे रह कर रात्रि बिता देते तथा भाग्य परीक्षा के लिए जुए में भी प्रवृत्त हो जाते हैं। यह निन्द्य प्रथा इस उत्सव का कलंक है।

चौथे दिन गोवर्द्धन-पूजा होती है। यह पूजा श्रीकृष्ण जी के गोवर्द्धन धारण करने की स्मृति में की जाती है। स्त्रियाँ गोमय (गोबर)-निर्मित गोवर्द्धन की मूर्ति स्थापित करती हैं। उसी के साथ गोबर की गौएँ और गोपाल बनाती हैं। रात्रि को सब लोग उनकी पूजा करते हैं। किसान लोग अपने अपने बैलों को अच्छी तरह नहलाते और उनके शरीर पर मेहँदी रंग आदि लगाते हैं। फिर उन्हें पकवान तथा गुड़ मिश्रित जौ बाजरा आदि खिलाते हैं। गोवर्द्धन-पूजा की प्रथा भारतवर्ष में गोधन के महत्त्व की द्योतक है। इसी दिन अन्नकूट भी मनाया जाता है। लोग नाना प्रकार के भोजन बना कर अपने इष्टदेव को समर्पित करते और स्वयं खाते हैं। पाँचवे दिन 'भैया दूज' होती है। इसको यम-द्वितीया भी कहते हैं। इस दिन लोग गंगा-यमुना आदि पवित्र नदियों में स्नान करते हैं। बहनें अपने भाइयों को बड़े प्रेम से भोजन करा कर उनका तिलक करती हैं।

वर्षा ऋतु में मेंह पड़ने के कारण मकान टूट-फूट जाते हैं अतएव उनकी मरम्मत करानी पड़ती है। दीवाली के त्योहार के बहाने घरों की

मरम्मत हो जाती है और साल भर का कूड़ा-करकट फिंक जाने से घरों में स्वच्छता आ जाती है। इस त्योहार से प्रेम सौहार्द और सहानुभूति का विकास होता है, मनोमालिन्य दूर कर लोग प्रेम से आपस में मिलते हैं। यह मनोरंजन का अच्छा साधन है। इससे जातीय भावों की भी वृद्धि होती है और लोग वर्ष भर का अपना हिसाब किताब भी ठीक कर लेते हैं।

इस त्योहार के लाभालाभ

दीपावली के पवित्र अवसर पर कुछ लोग जुआ खेलना आवश्यक समझते हैं और उस दिन की हार-जीत को साल भर की हार-जीत मानते हैं। इसका कभी-कभी बुरा परिणाम देखने में आता है। कितने ही तो अपनी गाढ़े पसीने की कमाई को घंटों में लुटा कर राजा से रंक बन जाते हैं। कहीं-कहीं मारपीट तक की नौबत आ जाती है और अनेकों को जेल के कठोर कष्ट भी सहने पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में विशेष सुधार की आवश्यकता है।

होली

पर्व या त्योहार जातीय जीवन के प्राण होते हैं। यही किसी जाति की उच्चता को प्रकट करते हैं। 'होली' भी देश का एक बड़ा पर्व है।

यह ठीक है कि इस पर्व का रूप बहुत बिगड़ गया है। कोयले की केरी उड़ाना, गन्दी नाली का पानी डालना, धूल उड़ाना, धोखे से किसी को सताना, खिल्ली उड़ाना, भद्दे गीत गाना, मदिरा का प्रयोग तथा स्वांग बना कर निकालना—ऐसी रीतियाँ हैं, जिनसे होली के पर्व से सज्जन डरने लगे हैं, इसे शूद्रों का त्योहार कहने लगे हैं, पर वस्तुतः होली का अपना महत्त्व ऋतु-परिवर्तन से है।

'वसन्त' को ऋतुराज कहा गया है। इसमें न अधिक गर्मी होती है न सर्दी। बड़ा सुहावना मौसम होता है। उपवनों में जंगलों में नया जीवन मन को हरने लगता है। वृक्षों पर नई कोंपलें निकलने लगती हैं। रंग-बिरंगे फूल अपनी छटा से मन मोहने लगते हैं। कोकिल मधुर कंठ से राग अलापने लगता है। वृक्ष भी बौरों और फूलों से महक उठते हैं। प्रकृति की यही शोभा, यही सुन्दरता 'होली' की प्रेरणा है। फिर इन दिनों गेहूँ और जौ पकने लगते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में तो फसल कट चुकती है। फसल की प्राप्ति की प्रसन्नता में किसान नाच उठते हैं। सरसों के पीले फूलों की शोभा खेतों को सुशोभित कर रही होती है। मनुष्य प्रकृति को फूला देख आप भी वैसा ही उत्सव मनाने लगता है। संभवतः यही इस त्योहार की स्थापना का मूल कारण है। इस दिन वह सभी बन्धु-बांधवों से मिल कर प्रसन्न होता है। रूठे बन्धुओं को मनाता है। वैर-वैमनस्य भूल जाता है। अबीर और केवड़ा मिला रंग एक दूसरे पर डालता है। राग-वाद्य की धूम मच जाती है। वस्त्रों पर रंगबिरंगे छींटों की बहार होती है। टोलियों की टोलियाँ कहाके लगाती, नाचती-कूदती, खेलती-खाती बाहर निकल पड़ती हैं। अनोखी बहार होती है। उदासी दुःख वा चिन्ता—इनका नाम तक नहीं रहता।

यह पर्व फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन होता है। उस रात्रि को होलिका जलाते हैं। उसमें उपले, लकड़ियाँ, पुराने चर्खे आदि डाल कर प्रसन्नता मनाते हैं। गन्ने और धान भी उसमें डालते हैं। देव-पूजन वा देव-बलि के रूप में नये अन्न का प्रयोग किया जाता है। बड़े बड़े मन (मंडक) वा पकवान उसी होलिका की आग में भूने तथा परस्पर बाँट कर खाये जाते हैं।

बंगाल और पंजाब के अधिकांश भाग में होली नहीं जलाई जाती और पूर्णिमा के दिन ही रंग खेला जाता है। मिथिला में पूर्णिमा को दिन में रंग खेल कर रात को होलिका-दहन किया जाता है। उत्तर प्रदेश में वसन्त पंचमी के दिन से लोग सार्वजनिक स्थानों पर लकड़ियाँ जमा करना आरंभ कर देते हैं। पूर्णिमा की रात को लकड़ियों के ढेर में आग लगा कर उसके चारों ओर लोग नाचते और गाते हैं। अगले दिन (प्रतिपदा के दिन) रंग खेला जाता है। छोटे-बड़े सब मिल कर रंग खेलते हैं। लोग इष्टमित्रों के घर जा कर एक दूसरे पर रंग डालते और अबीर गुलाल मलते हैं। अभ्यागतों को मिठाई आदि खिला कर और गले मिल कर विदा करते हैं। कई स्थानों पर दो-दो तीन-तीन दिन रंग खेला जाता है। कुछ लोग राह चलतों पर रंग मिट्टी गोबर आदि डालते और भद्दी गालियाँ गाते हैं। यह इस पर्व का कलंक है।

'होलिका' हिरण्यकशिपु राक्षस की बहिन थी। उसे वरदान प्राप्त था कि वह आग में भी नहीं जलेगी। उसी राक्षस का पुत्र प्रह्लाद पिता की इच्छा के विरुद्ध प्रभु पर विश्वास करता था। पिता के समझाने धमकाने और दण्ड से भी वह अपने निश्चय से विचलित न हुआ। राक्षस जल उठा। वह पुत्र को मार डालना चाहता था। उसने प्रह्लाद को पर्वत से गिराया, तप्त थम्भ से बँधवाया तथा साँपों से कटवाया। पर प्रह्लाद फिर भी जीवित रहा। अन्त में हिरण्यकशिपु ने उसे अपनी बहन होलिका के सुपुर्द किया। होलिका प्रह्लाद को गोद में ले कर आग में बैठ गई। किन्तु वह जल गई, प्रह्लाद का कुछ न बिगड़ा। इस पर्व के साथ यह पौराणिक कथा भी जुड़ी हुई है।

कभी इस 'पर्व' को यज्ञों से मनाते थे। मनुष्य-भाव उनमें प्रधान होता था। छोटे बड़े, नीच-ऊँच की भावना न रहती थी। सभी

मिल कर पर्व मनाते। प्रीतिभोज खाये जाते। गीतों के भी उत्सव होते। मिठाइयाँ बँटतीं। नव-वर्ष की योजनाएँ बनतीं। बीते वर्ष को न्यूनताओं पर विचार होता। पर धीरे धीरे यह पर्व विकृत हो गया। इसमें शराब और ताड़ी का प्रयोग होने लगा। आते जाते पर कीचड़ उछालना, गाली देना, भद्दे मखौल करना, स्त्रियों का भी लिहाज न करना एक साधारण सी बात हो गई। इससे सभ्य समाज में यह पर्व अपना महत्त्व खोता जा रहा है। फिर भी छोटे बड़े सभी इस त्योहार को मनाते हैं। उस अवसर पर छोटे बड़े का कोई भेद नहीं रह जाता। यही इस त्योहार की विशेषता है।

क्रिकेट

आज क्रिकेट संसार का सर्वोत्कृष्ट खेल माना जाता है। यह अंगरेजों का अत्यन्त प्राचीन जातीय खेल है। भारतवर्ष में इसके प्रचार का श्रेय बंबई के भूतपूर्व गवर्नर स्वर्गीय लॉर्ड हैरिस को है। इन्हीं महाशय का बोया हुआ बीज आज बृहद् वृक्ष के रूप में दिखाई देता है। आजकल कलकत्ता दिल्ली, बम्बई आदि बड़े नगरों में प्रतिवर्ष क्रिकेट के मैच होते हैं और उनमें सैकड़ों खिलाड़ी सम्मिलित होते हैं और सहस्रों क्रीड़ा-प्रेमी इनके समाचार जानने को उत्सुक रहते हैं। अंग्रेज़ी राष्ट्रपरिवार में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ यह खेल न खेला जाता हो।

खेल का इतिहास और उसका प्रचार

अन्तरजातीय प्रतियोगिता सर्वप्रथम इंगलैंड और अस्ट्रेलिया के बीच प्रारम्भ हुई और आज भी यह अंग्रेज़ी राष्ट्रपरिवार की प्रमुख प्रतियोगिता है। धीरे-धीरे दक्षिण अफ्रीका, न्यूज़ीलेंड, वेस्ट इंडीज़ आदि उपनिवेश भी इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होते गये। पहले भारतवर्ष

इसमें नहीं आया था, इसीलिए अनुपम कौशल-संपन्न कलाकार स्वर्गीय महाराजा जाम साहिब रणजीतसिंह जी, उनके भतीजे कुमार श्री दलीप-सिंह जी और नवाब पटौदी जैसे निपुण भारतीय खिलाड़ी इस प्रति-योगिता में इंगलैंड की ओर से खेले। अब प्रतिवर्ष भारतवर्ष भी इंगलैंड वेस्ट इंडीज़ और आस्ट्रेलिया से मैच खेलने लगा है। १९५९-६० में आस्ट्रेलिया का विश्वविजयी क्रिकेट-दल भारत में क्रिकेट खेलने आया। दिल्ली कानपुर बंबई मद्रास और कलकत्ता में पाँच मैच हुए। बंबई और कलकत्ता के मैचों में दोनों पक्ष बराबर रहे। दिल्ली और मद्रास में आस्ट्रेलिया ने भारत को पराजित किया। कानपुर में भारत जीता। अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिता में यह भारत की पहली विजय थी। परन्तु इसका इसलिए भी बहुत महत्त्व था कि इस मैच में भारत ने आस्ट्रेलिया के उस दल को हराया था जो और सब देशों में अपराजित रहा था। इस मैच में भारत की विजय का मुख्य श्रेय गुजराती खिलाड़ी श्री जस्सू पटेल के गेंद फेंकने के कौशल को था। उन्होंने पहली पारी में ६९ 'रन' पर ९ और दूसरी पारी में ५५ 'रन' पर ५, कुल मिलाकर १२४ 'रन' पर १४ खिलाड़ी 'आउट' किये। दूसरे ही दिन जस्सू पटेल का नाम क्रिकेट खेलने वाले देशों में घर घर में पहुँच गया, सभी देशों के समाचार-पत्रों में उनका चित्र छपा। राष्ट्रपति ने गणतन्त्र दिवस पर उन्हें 'पद्मश्री' उपाधि से विभूषित कर सम्मानित किया।

खेल किस प्रकार खेला जाता है

क्रिकेट के लिए नियत विस्तार का सर्वथा समतल आयताकार क्षेत्र चाहिए। बीच में बाईस गज़ के अन्तर से आमने-सामने सत्ताईस-अट्ठाईस इंच ऊँचे तीन डंडे गाड़ कर दो 'विकेट' बनाये जाते हैं। 'विकेटों' से समान्तर और चार फुट की दूरी पर दो रेखाएँ खींची जाती हैं जो बल्ले वाले

खिलाड़ी (बैट्समैन) की सीमाएँ हैं। यहीं खड़ा हो कर खिलाड़ी खेलता है। जब एक ओर का खिलाड़ी दौड़ कर दूसरी ओर पहुँच जाता है और उधर का खिलाड़ी इधर आ जाता है, तो एक 'रन' होता है। सुविधा के लिए सीमा निश्चित कर दी जाती है जिसके पार गेंद के लुढ़क कर या ऊपर ही ऊपर जाने से खेलने वालों को बिना दौड़े ही चार या छह 'रन' मिल जाते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी के 'रन' जोड़ कर जिस दल के 'रन' अधिक हुए हों, वह विजयी होता है।

जिस दल के खेलने की बारी होती है, उसके दो खिलाड़ी टाँगों और हाथों की रक्षा के लिए 'पैड' और विशेष प्रकार के दस्तानों से सज कर बल्ले ले कर मैदान में आते हैं। खिलाने वालों में से एक खिलाड़ी एक विकेट से कतिपय नियमों के अनुकूल दूसरे विकेट की ओर गेंद फेंकता है, जिसे 'बॉल देना' कहते हैं। एक दूसरा खिलाड़ी शरीर रक्षा के अनेक साधन धारण करके गेंद रोकने के लिए दूसरी ओर विकेट के पीछे खड़ा होता है। दल-नायक शेष खिलाड़ियों को बॉल देने वाले के कौशल और खेलने वाले की योग्यता का विचार कर उचित स्थानों पर खड़ा करता है। खेलने वालों का उद्देश्य अधिक से अधिक 'रन' बनाने का होता है और खिलाने वालों का ध्येय यह रहता है कि यथासंभव कम 'रन' बनें। 'बॉल' देने वाले की कारीगरी इस बात में है कि या तो गेंद (बॉल) विकेट में लगे, या खेलने वाले के बल्ले में लग कर उछल जाय ताकि उसके दूसरे साथियों में से कोई उसे लील (कैच कर) ले, अथवा गेंद मारने में खेलने वाला अपनी सीमा का अतिक्रम करे और चूक जाय। इसलिए वह खेलने वाले का खयाल करके कौशल पूर्वक गेंद के वेग, 'पिच' एवं दिशा आदि में परिवर्तन करता रहता है, जिससे खेलने वाला भ्रम में पड़ जाय।

दूसरी ओर खेलनेवाला इस कौशल-प्रतिस्पर्धा में विकेट की रक्षा के लिए बल्ले को सीधा करके इस तरह 'हिट' लगाता है कि यथासंभव गेंद बिना ऊपर उठे ही रोकने वालों के बीच से निकल जाय। ग्यारह विपक्षियों से घिरा हुआ और यह जानता हुआ कि थोड़ी भी गलती हुई और दाँव का अंत हुआ, बंदूक से निकली हुई गोली के समान आती हुई गेंद से खिलाड़ी अपने विकेट की रक्षा करता है और अपने दल के लिए 'रन' बनाता है। खिलाने वाले ध्यान-पूर्वक गेंद पर दृष्टि जमाये नियत स्थानों पर इस ताक में डटे रहते हैं कि खेलने वाला किधर 'हिट' लगाता है। गेंद को पकड़ने, रोकने तथा 'कैच' करने के लिए वे सदा सतर्क रहते हैं।

क्रिकेट बड़ा खर्चीला खेल तो है ही, साथ ही इसमें नैपुण्य प्राप्त करने के लिए बहुत देर तक निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है।

खेल के लाभ

खेल हमारे शरीर की मांस-पेशियों को पुष्ट करते हैं और हम में साहस एवं सहनशीलता का संचार करते हैं। खेलों से हममें जीवन के आनन्द की वह अनुभूति, वह जिन्दादिली आती है जो मरते दम तक हार मानने का नाम तक नहीं जानती। खेल खिलाड़ी के चरित्र को सुन्दर, परिपक्व तथा सुदृढ़ करके उसे शान्ति-पूर्ण व्यवसाय के योग्य ही नहीं बनाते, बल्कि इस योग्य भी बनाते हैं कि अवसर पड़ने पर वह देश के लिए शस्त्र ग्रहण कर सके। यही आशय ड्यूक ऑफ वैलिंगटन की प्रसिद्ध उक्ति "वाटरलू का युद्ध ईटन के खेल के मैदान पर जीता गया" में छिपा है। क्रिकेट सर्वोत्कृष्ट खेल है, इसके खेलने से उपर्युक्त गुण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। खिलाड़ियों के अतिरिक्त सर्वसाधारण के मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करने के साथ साथ यह हमारी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों

तथा वृत्तियों को विकसित करता है और जीवन-संग्राम में सफल योद्धा बनाने में विशेष रूप से हमारा सहायक होता है।

रेडियो

बिजली के आविष्कार ने इस संसार की काया ही पलट दी है। मनुष्य ने बिजली को वश में करके संसार को आश्चर्य में डालने वाले जितने नये नये पदार्थ बनाये हैं, उनमें से रेडियो भी एक है। हम अपने कमरे में बैठे हुए रेडियो के द्वारा सारे संसार से अपना संबंध कायम कर लेते हैं। अपने बिस्तर पर बैठ कर हम एक बटन दबाते हैं, किसी अच्छे संगीतज्ञ का सुमधुर गान सुनने लगते हैं, या पं० जवाहरलाल और सरदार पटेल आदि का भाषण सुनने लगते हैं। कभी बच्चों की सभा की मनोरंजक बातचीत रेडियो पर सुनते हैं, तो कभी स्त्रियों के लिए रोचक और उपयोगी बातें। देश-विदेश की खबरें जानने के लिए हमें अब अखबार पढ़ने की भी जरूरत नहीं रही, हम रेडियो पर दुनिया भर की खबरें सुन सकते हैं।

यदि हमारा दिल दिल्ली रेडियो सुनने का नहीं रहा, वहाँ पक्का गाना हो रहा है या अंग्रेजी में कोई कार्यक्रम चल रहा है, तो कोई हर्ज नहीं, ज़रा सी सुई घुमाने की देर है, जालंधर के रेडियो से किसी कोकिलकण्ठी पंजाबी रमणी का सुमधुर संगीत सुन लीजिये, बम्बई और कलकत्ता रेडियो स्टेशनों के गुजराती और बँगला के रोचक कार्यक्रम सुन लीजिये अथवा लखनऊ और इलाहाबाद के रेडियो से किसी हिन्दी कवि या साहित्यकार का साहित्य पर भूषण और प्रभाकर के लिए उपयोगी निबंध सुन कर लाभ उठाइये। आप यदि भारत के बाहर की दुनिया का हाल जानना चाहते हैं, तो भी कोई विशेष प्रयत्न नहीं

करना पड़ेगा। सिर्फ एक बटन घुमाने की देर है, लन्दन, बर्लिन, टोकियो, लाहौर, रंगून किसी भी देश से चलने वाला कार्य-क्रम आप सुन सकते हैं। अंग्रेजी, फारसी, उर्दू, जर्मन, इटैलियन, फ्रांसीसी, पश्तो किसी भी भाषा को सुन कर आप अपना मनोरंजन कर सकते हैं। आप बिस्तर पर बैठे रहिये, एक कदम चलने की जरूरत नहीं, और तमाम दुनिया की सैर कर लीजिये। यह है रेडियो की करामात।

रेडियो पर भिन्न भिन्न स्थानों से कार्यक्रम का प्रचार किया जाता है। इन स्थानों को ब्राडकास्टिंग स्टेशन कहते हैं। स्टेशनों पर एक माइक्रोफोन यंत्र लगा रहता है। इस यंत्र की रचना टैलीफोन के बोलने वाले भाग से मिलती जुलती है। इसमें बिजली की धारा गुज़रती रहती है। गायक या वक्ता माइक्रोफोन के सामने मुँह करके गाता या बोलता है। इससे वायु में शब्द की लहरें बिजली की लहरों का रूप धारण कर लेती है। यह लहरें ताँबे की तार में से गुजरती हुई एक और यंत्र में से गुज़रती हैं, जो इन लहरों की शक्ति को हजारों गुना तेज़ कर देता है। यहाँ से यह ब्राडकास्टिंग स्टेशन के 'एरियल' में जाती है। यह एरियल बहुत ऊँचे ऊँचे होते हैं। एरियल इन लहरों को आकाश में फैला देता है। एरियल से छूटी हुई लहरें सारे भूमंडल में बड़े वेग से फैल जाती हैं। इनकी चाल बहुत तेज़ है। ये एक सैकेंड में सात बार सारे भूमंडल के चारों ओर चक्कर लगा सकती हैं।

हमारे घर के रेडियो का एरियल उन लहरों को पकड़ कर बिजली की इन लहरों को फिर शब्द की लहरों का रूप दे कर वायु में छोड़ता है और हम उस गीत या भाषण को सुन सकते हैं। हमारा रेडियो हमारी इच्छानुसार हमें कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, जर्मनी, फ्रांस या दुनिया के किसी भी देश का प्रोग्राम सुना सकता है। हर

एक ब्राडकास्टिंग स्टेशन की बिजली की लहरों की लम्बाई अलग होती है। हमारे रेडियो में भी एक सुई लगी होती है, जिसे घुमाने से हमारा रेडियो इच्छित लम्बाई की लहरों को पकड़ने लगता है। इससे हम उन स्टेशनों के प्रोग्राम सुन सकते हैं।

रेडियो का आविष्कार करने की आवश्यकता भी इस कारण हुई थी कि टैलीफोन के लिए तारों और खम्भों के लगाने में करोड़ों रुपया खर्च हो सकता है। फिर समुद्रों, नदियों, पहाड़ों तथा अन्य दुर्गम स्थानों पर तो खम्भे लगाना असम्भव या दुःसाध्य होता है। भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसु और इटली के वैज्ञानिक मारकोनी ने बिना तार के बातें करने का आविष्कार करके सचमुच संसार का बहुत उपकार किया है। आजकल जहाजों और हवाई जहाजों में भी बेतार का प्रबंध रहता है। जब किसी जहाज पर कोई आपत्ति आती है तो वह बेतार द्वारा अपने समाचार भेज देता है और आसपास के जहाज उसकी सहायता के लिए तुरन्त पहुँच जाते हैं।

रेडियो केवल मनोरंजन की सामग्री नहीं है। इससे देश-विदेश के समाचार तथा विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए उपयोगी कार्यक्रम का भी प्रसार किया जाता है। जब देश का विभाजन हुआ था तो शरणार्थी भाइयों के पते भी उनके सम्बन्धी रेडियो की मार्फत पूछा करते थे। सरकारें या राजनीतिक दल कोई सूचना या प्रचार एक क्षण में सर्वत्र पहुँचा सकते हैं। म० गांधी के प्रार्थना-प्रवचन भी रेडियो पर १०-१५ दिन तक लगातार प्रसारित किये जाते रहे। स्पूतनिकों में रखे वैज्ञानिक यन्त्र रेडियो द्वारा ही वैज्ञानिक जानकारी पृथ्वी पर भेजते हैं। चंद्रमा के अज्ञात पश्चार्ध भाग का चित्र भी रेडियो द्वारा ही प्राप्त किया गया है। और वैज्ञानिक लोग अपनी प्रयोगशाला में बैठे बैठे चंद्रमा तक

पहुँचने वाले 'राकेट' का संचालन भी रेडियो द्वारा ही करते हैं। सचमुच रेडियो बहुत चमत्कारपूर्ण और उपयोगी आविष्कार है।

बिजली के उपयोग

वास्तव में बीसवीं सदी बिजली का युग है। बिजली के आविष्कारों ने सचमुच दुनिया को बदल दिया है। छोटे से छोटे घरेलू काम हों या रेलगाड़ी-संचालन जैसे बड़े से बड़े कार्य, सब एक बटन दबाते ही होने लगते हैं। घर में बिजली के लैंप जलते हैं, इनमें न मिट्टी के तेल की जरूरत पड़ती है, न दियासलाई की। फेफड़ों को नुकसान पहुँचानेवाला धुआँ भी बिजली से नहीं निकलता। घर में बिजली द्वारा रोटी सेंकी जा सकती है, दाल-सब्जी भी पक सकती है, कपड़े धोये जा सकते हैं, झाड़ू दिया जा सकता है, बिना नाई साबुन पानी या ब्रुश के हजामत की जा सकती है। सख्त गरमियों में बटन दबाते ही बिजली का पंखा हमारी सेवा करने को तैयार हो जाता है और सरदियों में 'हीटर' सारे कमरे को गरम करके हमें आनन्ददायक गरमी देने लगता है।

बिजली घरेलू कामों के अतिरिक्त हमारे स्वास्थ्य और शरीर-रक्षा के लिए भी बहुत काम देती है। एक्स-रे से हम शरीर के अन्दर का चित्र ले सकते हैं और देख सकते हैं कि बन्दूक की गोली, काँच का टुकड़ा या बच्चे द्वारा निगला गया पैसा कहाँ है। एक्स-रे से तपेदिक के रोगियों के फेफड़े भी देखे जाते हैं और टूटी हुई हड्डी आदि तक का पता लग जाता है। चुंगी पर काम करने वाले अफसर बाहर से आने वाले पारसलों पर एक्स-रे डाल कर जान लेते हैं कि उन पारसलों में क्या सामान है। शरीर के निर्जीव या कमजोर अंगों पर

विजली की सहायता से अल्ट्रा-वायलट किरणें डाल कर वीमारी को भी दूर किया जाता है।

मोटर विजली के आविष्कार से ही चलती है। बड़े-बड़े कल कारखाने और अखवार छापने वाले बृहदाकार रोटरी-यंत्र भी विजली के वटन दवाते ही अपना कार्य शुरू कर देते हैं। विजली की मोटर वटन का संकेत करते ही कुएँ से पानी की धारा वाहर निकालने लगती है ; न वैलों की जरूरत, न उनके चारे की। तार द्वारा आप हज़ारों मील दूर अपना संदेश भेजते हैं। टैलीफोन द्वारा आप हज़ारों मील दूर बैठे हुए अपने मित्र से वातें कर सकते हैं। सिर्फ टैलिफोन उठा कर नंवर का डायल घुमाना होगा और आप मित्र से खूव वातें कर लीजिये। टैलिविजन यंत्र के द्वारा तो आप उसे देख भी सकते हैं, वातें भी कर सकते हैं। सिर्फ उसे छू नहीं सकेंगे। पर शायद विज्ञान वह भी चमत्कार कर दिखाये। सिनेमा भी विजली को वश में करके वनाया गया है। पहले केवल मूक चित्र वनते थे, अब तो वोलने वाली तस्वीरें आ कर हमें परदे पर सव कुछ दिखाती और वातें सुनाती हैं। वह दिन भी दूर नहीं है, जब कि हम तस्वीरों में अच्छी बुरी गंध भी पा सकेंगे।

पिछले युद्ध के दिनों में तो और भी बड़े-बड़े आविष्कार किये गये हैं। रैडार नामक यंत्र से हम किसी शत्रु-विमान की दूरी और दिशा का ज्ञान भी कर लेते हैं। रेडियो की किरणों से मोटरों और वमों को विना किसी चालक के दूर तक भेजा जा सकता है और उन्हें प्रत्येक मोड़ पर घुमाया भी जा सकता है।

इस तरह विज्ञान के आविष्कारों में बिजली का वहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। बिजली तीन प्रकार से पैदा की जाती है—रगड़

से, रासायनिक क्रिया से और चुम्बक से। दो बड़े-बड़े बादल टकरा कर भी बिजली पैदा करते हैं। परन्तु यह बिजली उपयोग में नहीं आ सकती। रासायनिक क्रिया और चुम्बक से जो बिजली पैदा की जाती है, वह तारों के द्वारा एक स्थान से अन्यत्र ले जाई जा सकती है। रासायनिक क्रिया से उत्पन्न की गई बिजली महँगी पड़ती है, इस लिए चुम्बक से पैदा की गई बिजली का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है। अंगरेज़ वैज्ञानिक फैराडे ने १८३१ ई० में पता लगाया था कि ताँबे के तार की कुंडली में चुंबक को घुमाया जाय या घोड़े की नाल की शकल के चुंबक के दोनों ध्रुवों के बीच में तार की कुंडली को घुमाया जाय या कुंडली को स्थिर रख कर चुंबक को उसके चारों ओर घुमाया जाय तो कुंडली में बिजली की धारा बहने लगती है। बस, इसी नियम के आधार पर डायनेमो बनाये गये, जिनसे बिजली पैदा की जाती है।

आज अगर एक दिन भी, दिल्ली, बम्बई, जालंधर या शिमला आदि किसी बड़े शहर में बिजली एकाएक बन्द हो जाय, तो मालूम पड़े कि हम बिजली के कितना वश में हो गये हैं और बिजली हमारी कितनी अधिक सेवा करती है।

भाखड़ा नंगल-योजना

यह योजना विश्व में अनोखी तथा अपने आप में अपूर्व है। यह हिमालय की सुन्दर तराई में संपन्न की जा रही है। भारत की राजधानी देहली से यह केवल २२० मील की दूरी पर है। यहाँ बनाये जा रहे बाँध की ऊँचाई ७४० फुट होगी जो विश्व भर में सब से ऊँचा होगा।

इस योजना का विचार सर्वप्रथम सर लुईस डेन को सन् १९०८

में आया था, जो उस समय पंजाब के सहायक गवर्नर थे। सन् १९११ में इस योजना की रूपरेखा तैयार की गई। उसके बाद समय समय पर इसमें संशोधन होते रहे। अन्त में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसे वास्तविक रूप देने का कार्य प्रारंभ हुआ।

इस योजना का नाम उन दो ग्रामों के नाम पर रक्खा गया है, जहाँ यह क्रियान्वित की जा रही है। भाखड़ा गाँव तो ठीक उस स्थान पर बसा था, जहाँ सतलुज नदी एक तंग पहाड़ी मार्ग से होती हुई मैदान में उतरी है। इस मार्ग में दोनों ओर पर्वत हैं। इन्हीं पर्वतों के बीच एक बाँध बाँध कर जल-संग्रह की योजना बनाई गई है। ऊपर के भाग में मीलों तक पर्वतों से घिरी भूमि है। इस बाँध के बन जाने से यह एक विशाल झील के रूप में परिवर्तित हो गई है। जिसमें बरसात के दिनों में सतलुज का सारा फालतू पानी इकट्ठा किया जायगा, जो वर्ष भर पंजाब और राजपूताना की एक करोड़ एकड़ भूमि को सींचेगा। इससे नीचे की ओर आठ मील पर दूसरा गाँव नंगल है। आज यह नवीन ढंग का सुन्दर नगर है। किन्तु योजना से पूर्व यहाँ भी एक बड़ा पहाड़ी गाँव तथा छोटी सी मण्डी थी। इन्हीं दोनों गाँवों में योजना का विस्तार होने से इसका नाम भी भाखड़ा-नंगल योजना रक्खा गया है।

इस योजना के मुख्य भाग हैं—भाखड़ा बाँध, नंगल बाँध, नंगल की बड़ी नहर, भाखड़ा का नहर जाल, भाखड़ा गंगूवाल तथा कोटला के स्थानों पर बनाये जाने वाले बिजली घर।

भाखड़ा बाँध की ऊँचाई का लक्ष्य ७४० फुट है। यह संसार भर में सबसे ऊँचा बाँध होगा। अब तक अमरीका का हूवर बाँध सबसे ऊँचा था, जिसकी ऊँचाई ७२६ फुट है। भाखड़ा बाँध की ऊँचाई का अंदाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि वह दिल्ली की प्रसिद्ध कुतुब-

मीनार से तीन गुणा से भी अधिक ऊँचा होगा। इसके निर्माण-कार्य में कुछ विदेशी योग्य इंजीनियरों के अतिरिक्त तीन सौ भारतीय इंजीनियर तथा आठ हजार कार्यकर्ता वारी वारी से तीन शिफ्टों में रातदिन लगे रहते हैं। कार्य के लिए बड़े बड़े क्रेन लगे हैं जो विजली के द्वारा चलते हैं और रातदिन बजरी सीमेंट आदि से भरे ८-८ टन के भारी डोलों या टैंकों को बाँध बनाने के स्थान पर चढ़ाते उतारते रहते हैं।

वाँध के निर्माण से पूर्व नदी के जल को निकालने के लिए उसके दोनों ओर खड़े पर्वतों को काट कर बड़ी बड़ी दो सुरंगें तैयार की गईं। दो वर्ष तक नदी का जल निरन्तर इन्हीं सुरंगों से हो कर बहता रहा है। तब बाँध के स्थान को गहरा खोद कर, नदी के तट से १९० फुट नीचे इसकी नींव रक्खी गई है।

बाँध-निर्माण की सामग्री रेत, बजरी, सीमेंट आदि की समस्या भी सौभाग्य से शीघ्र ही सुलझ गई। बाँध से केवल चार मील की दूरी पर ही बजरी का विशाल भंडार मिल गया। सीमेंट भी अस्सी मील की दूरी पर ही बनी एक फैक्टरी से प्राप्त हो गया। बजरी लाने के लिए भी एक लम्बी मशीन योजना तैयार कर ली गई। जिससे स्वतः ही टीन के परनालों पर बहती हुई प्रति घंटा २० हज़ार मन बजरी बाँध स्थल पर पहुँचती है। सूरजपुर फैक्टरी से रेलगाड़ी के विशेष डिब्बों में, जो विशेष रूप से इसी काम के लिए बनाये गये हैं, बंद होकर सीमेंट आता है। रेलगाड़ी के डिब्बे बिलकुल बंद सील हुए बाँध तक पहुँचते हैं। यहाँ अनेक यन्त्र लगा दिये गये हैं, जो बजरी रेत आदि सामग्री को साफ करते, उचित मात्रा में तोलते, मिलाते तथा बाँध-कार्य योग्य बना कर टैंकों में भर कर तैयार कर देते हैं। यहीं से

क्रेन इन टैंकों को उठा कर नीचे उतारते जाते हैं।

इस क्रम से वनता बाँध अव प्रायः समाप्ति पर आ गया है। बाँध के दूसरी ओर जल की विशाल झील भी बन गई है। गुरु गोविन्दसिंह जी के नाम पर इसका नाम गोविन्द सागर रक्खा गया है। इसका क्षेत्रफल ६६ वर्ग मील है। इसमें इतना पानी समा सकता है कि सारे देश के लोगों की वर्ष भर की घरेलू जरूरतों के लिए पर्याप्त हो। गोविन्द सागर में वड़े परिमाण में मछली पालने का कार्य भी होगा।

भाखड़ा बाँध पर लगे लोहे के फाटकों द्वारा जब जितना पानी चाहें सतलुज नदी में छोड़ा जा सकता है। इस तरह सतलुज नदी के पानी पर पूरा नियंत्रण कर लिया गया है।

भाखड़ा बाँध से नीचे की ओर आठ मील पर नंगल नगर है। यहाँ सतलुज पर लगभग ९५५ फुट लंबा और ९५ फुट ऊँचा एक और बाँध बना कर नंगल की बड़ी नहर निकाली गई है। इस बाँध की नींव भी नदी तल से बहुत नीचे है। नदी तल से ६७ फुट नीचे एक परीक्षा गैलरी है, जो विशेष रूप से दर्शनीय है। दर्शक इसे पार करते चकित रह जाता है। इस बाँध-द्वारा नदी के पानी पर पूरा नियंत्रण कर लिया गया है। नहर के लिए जितने पानी की आवश्यकता हो वह ले कर शेष नदी में जाने दिया जाता है।

नंगल नहर ४० मील लंबी है। भाखड़ा की मुख्य नहरें ६९० मील और उनकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ २१०० मील लंबी है। इनसे पंजाब और राजपूताना की १ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इनके जल से हरियाणा और बीकानेर के सूखे इलाके सरसब्ज़ हो उठेंगे।

नंगल नहर पहाड़ी प्रदेश में से गुजरती है। अतः इसमें स्वाभाविक रूप से जलप्रपात बन गये हैं। जिनके द्वारा गंगूवाल और कोटला नामक स्थानों पर दो विशाल बिजलीघर बनाये गये हैं। गंगूवाल नंगल से १२ मील की दूरी पर है और कोटला गंगूवाल से ६ मील की दूरी पर। दोनों स्थानों पर नहर के पानी को ९३ फुट की ऊँचाई से नीचे गिरा कर बिजली पैदा की जाती है। हर एक स्थान से लगभग ७२००० किलोवाट बिजली पैदा होती है।

इसी तरह दो विशाल बिजलीघर भाखड़ा बाँध के दोनों ओर बनाये जा रहे हैं। ये गोविंदसागर के पानी से चालू होंगे। ये दोनों बिजलीघर १५-१५ मंज़िल ऊँचे होंगे और एशिया में सबसे बड़े होंगे। प्रत्येक में ९०००० किलोवाट के १० जेनरेटर होंगे। इन बिजलीघरों में पैदा हुई बिजली समूचे पंजाब दिल्ली हिमाचल प्रदेश और राजस्थान राज्यों में पहुँचेगी।

इन योजनाओं के कारण भाखड़ा नंगल प्रदेश भारत के नये तीर्थस्थान बन गये हैं। प्रतिदिन इन्हें देखने के लिए देश विदेश से औसतन ३००० यात्री आते हैं। इसलिए नंगल को पंजाब के प्रायः हर बड़े शहर और दिल्ली से रेल तथा बस द्वारा जोड़ दिया गया है।

कुछ वर्णनात्मक निबन्धों के खाके

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए अब कुछ वर्णनात्मक निबंधों के खाके दिये जाते हैं। विद्यार्थियों को इनकी सहायता से इन विषयों पर स्वयं निबंध लिखना चाहिये। इसके बाद इन खाकों की सहायता के बिना भी वे अन्य विषयों पर लिखना सीख सकेंगे।

गंगा

भारत की सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक पवित्र मानी जाने वाली नदी। पुराणों के अनुसार भगीरथ तप करके पृथ्वी पर लाये थे, अतएव भागीरथी। पर्वतराज हिमालय से निकल कर पहाड़ों का चक्कर काट कर हरद्वार के आगे मैदान में पहुँचती है। उसके बाद सारे उत्तरभारतीय मैदान को सींचती हुई कलकत्ते के पास समुद्र में मिलती है। बीच के अनेक नदियाँ इससे मिलती हैं। प्रयाग में यमुना का इसके साथ संगम, बड़ा पवित्र। इसके किनारे पर हरद्वार, प्रयाग, काशी आदि अनेक तीर्थ। इसमें स्नान करना पवित्र समझा जाता है। गंगा-स्नान का दृश्य। स्नान से स्वर्ग मिलता है, और सब पाप धुल जाते हैं, ऐसा विश्वास। व्यापार का बड़ा भारी साधन। इसमें दूर तक जहाज चलते हैं। किनारों पर कई प्रसिद्ध व्यापारिक नगर। अनेक नहरें निकाली गई हैं, जिनसे सिंचाई होती है। इसका पानी कभी खराब नहीं होता।

समुद्र

पृथ्वी के चारों ओर पानी ही पानी। सारे भूमंडल के चार भागों में से तीन भाग समुद्र। सारा संसार एक ही समुद्र से घिरा हुआ, सुविधा के लिए पांच बड़े भाग जो महासागर कहलाते हैं—एटलांटिक महासागर, प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर, उत्तरी ध्रुव सागर, दक्षिणी ध्रुव सागर। इसके सिवाय अनेक छोटे छोटे समुद्र। उनसे भी छोटे टुकड़े जो स्थल में अन्दर की ओर चले गये हैं खाड़ी कहलाते हैं। समीपवर्ती देश या जल की रंगत के अनुसार नाम—अरब सागर,

लाल सागर, काला सागर। जल की रंगत सतह की मिट्टी के रंगत से ही वदलती है। गंभीर समुद्र की थाह पाना आसान नहीं, इसके अन्दर कितने ही पहाड़।

समुद्र का जल खारा। छोटी नदियाँ भी समुद्र में मिलते ही खारी हो जाती हैं। अनंत जल होने पर भी प्यासे की प्यास बुझाने में असमर्थ। समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता। पर चन्द्रमा के आकर्षण के साथ ज्वार-भाटा। नमक की उत्पत्ति। वर्षा का कारण।

जहाज पर वैठ कर समुद्र का दृश्य। चारों ओर जल ही जल, पृथ्वी का कोई पता ही नहीं। व्यापारिक और लड़ाकू जहाजों का इसके वक्ष-स्थल पर भ्रमण। विक्षुब्ध होने पर जहाज जल-मग्न। जल के भीतर दौड़ने वाली पनडुब्बी सबमेरीन।

समुद्र में अनेक प्रकार की मछलियाँ, सीप, शंख तथा मोती और मूँगा आदि वहुमूल्य चीजें। अतएव रत्नाकर। अनेक नदियाँ इसमें मिलती हैं अतः सरित्पति। आकाश के समान असीम। समुद्र तट का दृश्य। तट पर अनेक वंदरगाह, इनसे व्यापार की उन्नति। आधुनिक जल-सेना पर जातियों का भाग्य पर्याप्त निर्भर। जिस देश में जितने अच्छे वन्दरगाह, वह उतना उन्नत।

ग्रीष्म ऋतु

ऋतुराज वसन्त की समाप्ति पर कठोर ग्रीष्मऋतु का आगमन। नदी-तालाव सूखने लगते हैं, हरियाली का गलीचा फटने लगता है, पशु-पक्षी पानी की तलाश में इधर-उधर भटकते हैं।

स्कूलों-कालेजों और अनेक स्थानों पर सरकारी दफ्तरों का भी समय बदल जाता है। दुकानदार भी प्रायः दोपहर को छुट्टी करते हैं।

गर्मी बढ़ते ही स्कूलों-कालेजों में २-२ महीने की छुट्टियाँ हो जाती हैं। बहुत लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

पसीने और प्यास के मारे जान आफत में। अमीर लोग तो, खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे आदि लगाकर इसके प्रभाव से बच जाते हैं पर गरीबों और मजदूरी पेशा के लोगों के लिए यह ऋतु बड़ी कष्टकर है। पर फिर भी अनाज और फलों की दृष्टि से इसका होना आवश्यक है। घोर गर्मी के बाद ही सुखदायी वर्षा ऋतु आती है।

रक्षाबंधन (राखी)

श्रावण मास की पूर्णिमा। अतएव श्रावणी भी कहलाती है। हिन्दुओं का बड़ा पवित्र त्योहार है।

प्राचीन काल में ऋषि लोगों का यज्ञ, राजा-महाराजाओं को यज्ञ-रक्षा के लिए वचन-बद्ध करना। वैदिक मंत्रों से यज्ञोपवीत। मध्य काल में बहनें अपने भाइयों को राखी बाँधने लगीं। राखी के तागों का इतना महत्त्व है कि राखी-बद्ध भाई राखी भेजने वाली बहन के लिए सर्वस्व समर्पण करने को प्रस्तुत। सगे भाई-बहन से भी राखी द्वारा बने हुए भाई-बहन का सम्बन्ध अधिक महत्त्व-पूर्ण और स्थिर। अतएव जब कोई बलवान पुरुष किसी असमर्थ अबला पर अत्याचार करने को प्रस्तुत होता तो वह किसी बलवान राजा को राखी भेज देती और उस बहन की रक्षा करना राखीबद्ध भाई का कर्त्तव्य हो जाता।

आजकल बहनें अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी राखियाँ ले कर उस दिन भाइयों के घर पहुँचती हैं। राखी बाँध और टीका कर रुपये लेती हैं। इससे भाई-बहन का सम्बन्ध ताजा हो जाता है। यदि अब

भी बहनों की इज्जत की रक्षा के लिए भाई मध्यकाल की तरह तैयार हो जायँ तो भारत का कष्ट दूर हो जाय। कई स्थानों पर ब्राह्मण लोग राखी बाँधते हैं।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

यह त्योहार भगवान कृष्ण की जन्मतिथि भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को मनाया जाता है। भगवान कृष्ण का जीवन हमारे लिए आदर्श है। बाल्यकाल से मृत्यु पर्यन्त उनका जीवन परोपकार-साधन में ही बीता। अत्याचारी राजाओं को मार कर भारत में शान्ति स्थापित की। कंस जैसे अत्याचारी को मारना उन्हीं का काम था। मित्र सुदामा का दारिद्र्य क्षणभर में दूर कर दिया। वे सेवा भाव की मूर्ति थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने लोगों के चरण धोने का कार्य अपने जिम्मे लिया। महाभारत युद्ध में अर्जुन के सारथि बने और उसे गीता का अनुपम उपदेश दे उसका मोह दूर किया।

कृष्ण-मंदिरों में १५ दिन पहले से कृष्ण की झाँकियाँ होती हैं। गीता की कथा कही जाती है। इस दिन मंदिरों में विशेष रोशनी और सजावट होती है। लोग, विशेषतः सनातनधर्मी, अपने घरों में भी कृष्ण-मूर्ति की स्थापना करते हैं। वे अष्टमी का व्रत रखते हैं। आधी रात को जन्मदर्शन करके व्रत तोड़ा जाता है। आधी रात तक लोग कीर्तन में संलग्न रहते हैं।

कृष्ण जन्माष्टमी मनाने का तभी कुछ फल हो सकता है यदि हम भगवान कृष्ण की परोपकार-भावना को अपने हृदय में स्थान दें और गीता के आदेशों के अनुसार चलें।

दिल्ली

हमारे स्वतन्त्र भारत की राजधानी। यमुना के दाहिने किनारे बसी हुई। बड़ी प्रसिद्ध नगरी। प्राचीन काल में इसके स्थान पर बसा इन्द्रप्रस्थ नगर पांडवों की राजधानी। अनंगपाल तोमर द्वारा ११वीं शताब्दी में आधुनिक दिल्ली की स्थापना। शहाबुद्दीन गोरी के समय से भारत की राजधानी।

राजधानी के अतिरिक्त रेलों का केन्द्र भी। चाँदनी चौक, पुरानी दिल्ली में प्रसिद्ध बाजार, उसकी शोभा। दिल्ली के और अनेक दर्शनीय स्थान—ऐतिहासिक स्थान—लाल किला, जामा मसजिद, पांडवों का किला, कुतुबमीनार, अशोक का स्तंभ, जन्तर-मन्तर।

नयी दिल्ली अंग्रेजों ने बसाई। बहुत साफ। इसकी शानदार इमारतें—राष्ट्रपति का महल, संसद् का सभा-भवन। अब अंग्रेज बहुत कम दीखते हैं।

हमारा स्कूल

स्कूल का नाम। उसकी स्थिति। स्कूल की विशाल इमारत, पीछे की ओर खेलने का मैदान, सामने हरा-भरा घास का मैदान जिसमें स्थान स्थान पर क्यारियों में फूल।

कमरे हवादार। बीच में एक विशाल कमरा (हाल) है। उसके एक ओर लायब्रेरी। उत्तर पच्छिम कोने में वर्कशाप या हलवाई की दुकान जिसमें सब तरह की खाने पीने की चीजें रहती हैं।

स्कूल में लगभल ३००० विद्यार्थी और १०० के लगभग अध्यापक। अध्यापक ट्रेंड और अनुभवी और लगन से काम करने वाले।

स्कूल के हेडमास्टर श्री······हैं जिनकी सारी आयु शिक्षा के कार्य में व्यतीत हुई है। सफाई अनुशासन और समय के बड़े पाबन्द। इनका साप्ताहिक भाषण बड़ा प्रभावशाली होता है। उसमें प्रायः उच्च विचार और सादे जीवन, ईमानदारी, सचाई और देश सेवा आदि पर बल देते हैं।

स्कूल का परिणाम सदा ही अच्छा रहता है, खेलों में भी हमारा स्कूल अग्रणी है, प्रति वर्ष कितने ही कप जीतता है।

विवरणात्मक निबंध

महात्मा बुद्ध

महात्मा बुद्ध के पिता महाराज शुद्धोदन कपिलवास्तु के राजा थे। उनका जन्म का नाम कुमार सिद्धार्थ था। पूत के पाँव पालने में ही पहचाने जाते हैं—कुमार सिद्धार्थ अपने बाल्यकाल में ही सांसारिक विषयों से उदासीनता प्रकट करने लगे। उनके पिता ने उनको सांसारिक बंधनों में बाँध कर उनकी वैराग्य-वृत्ति दूर करने के लिए रूप- और गुण-संपन्न यशोधरा नाम की एक कुलवती कन्या से उनका पाणिग्रहण करा दिया। इसका भी उन पर अधिक प्रभाव न हुआ। रोग, बुढ़ापे और मृत्यु के दुःखमय दृश्यों ने उनके हृदय में सोई वैराग्यवृत्ति को पुनः जागरित कर दिया। उन्होंने सोचा कि यदि शरीर की यही दशा होनी है तो राज्य के ऐश्वर्य-पूर्ण भोग-विलास से क्या लाभ? इस विश्वव्यापी दुःख के शमन का उपाय खोजना चाहिये। कुछ दिन के अनन्तर यशोधरा पुत्रवती हुई, परन्तु पुत्र और पत्नी का माया-बंधन उनके विचारों को बदल न सका और एक रात उन्होंने दुःखों से मुक्ति पाने का मार्ग ढूँढने के लिए घर से बाहर जाने का निश्चय कर लिया। संकल्प भंग होने के भय से उन्होंने यशोधरा को नहीं जगाया। उसके ऊपर एक बार क्षणिक दृष्टिपात कर तथा स्नेह-भरी दृष्टि से सुन्दर बालक को देख कर वहाँ से विदा हो वे चल दिये। घर से बाहर आ कर उन्होंने अपना घोड़ा कसवाया और अपने साईस छंदक को अपने साथ ले लिया। कपिलवास्तु से कुछ दूर जा कर उन्होंने अपने केशों को तलवार से काटा और अपने वस्त्राभूषण छंदक को सौंप कर उसे कपिल-

वास्तु लौट जाने की आज्ञा दी। बेचारे छंदक की अवस्था सुमंत्र से भी खराब थी। सुमंत्र दशरथ की आज्ञा से रामचन्द्रजी को वन में छोड़ने गया था, छंदक तो राजा की आज्ञा के बिना ही गया था। अतः कुमार सिद्धार्थ को लौटाने के उसने बहुत यत्न किये किन्तु वे सब निष्फल हुए।

घर से निकल कर कुमार सिद्धार्थ ने पाँच ब्रह्मचारियों के साथ कुछ दिन तप किया। तप में उन्होंने अपने शरीर को बिलकुल घुला दिया। कुछ दिनों में उन पर तप की निस्सारता प्रकट हो गई और उन्होंने विचार द्वारा बोध प्राप्त करने का निश्चय किया। इस निश्चय से वे गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे समाधिस्थ हो कर बैठ गये। अन्त में चैत्र की पूर्णिमा की निर्मल ज्योत्स्ना में उनको ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उन्होंने जान लिया कि दुःख का कारण हमारी वासनायें हैं। वासनाओं का निरोध ही दुःख पर विजय पाना है।

बुद्धदेव ने दुःख का कारण तथा उसके शमन का उपाय निश्चय कर अपने ज्ञान से दूसरों को लाभ पहुँचाने का संकल्प किया। सबसे पहले उन्होंने बनारस में जा कर उपदेश दिया। बनारस में सारनाथ के भग्नावशेष उसी 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' के स्मारक हैं। भगवान् बुद्ध ने अत्यधिक भोग-विलास तथा कठिन तपश्चर्या दोनों को छोड़ कर बीच का साधन-मार्ग अपनाने के लिए कहा। उनका कहना था कि जो लकड़ी जल कर राख हो गई है, उसके द्वारा आग जलाने की चेष्टा अवश्य व्यर्थ होगी। इसलिए कठिन तपस्या (निवृत्ति) क्लेशदायक और व्यर्थ है। साथ ही इन्द्रियों के सुखभोग की लालसा (प्रवृत्ति) मनुष्य को मनुष्यत्व-हीन और नीच बना देती है। जीव-मात्र पर दया तथा सदाचार उनके धर्म के मुख्य अंग थे। अहिंसा और प्रेम से उन्होंने दिग्विजय करनी चाही। ऊँच-नीच के भेद-भाव तथा कर्म-कांड के आडं-

वरों के विरुद्ध उन्होंने घोर आंदोलन प्रारम्भ किया। मनुष्य-मात्र में समता तथा मानसिक शुद्धि द्वारा निर्वाणपद पाने का उन्होंने प्रचार किया। शीघ्र ही बुद्धदेव की ख्याति सारे भारत में फैल गई। उनके पुत्र राहुल तथा अन्य स्वजनों ने भी उनके धर्म और संघ की शरण ली तथा और भी बहुत से राजा-महाराजाओं ने उनके धर्म को अपनाया।

बुद्धदेव बहुत काल तक अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। और कई स्थानों में चातुर्मास व्यतीत कर उन्होंने नाना प्रकार के उपदेश दिये। ८० वर्ष की परिपक्व अवस्था में उन्होंने उदर-विकार से पीड़ित हो कर महा-निर्वाण को प्राप्त किया। उनकी अस्थियों के आठ भाग कर के आठों दिशाओं में उनके स्मारक-स्तूप बनाये गये।

इस प्रकार इस महापुरुष का संपूर्ण जीवन सांसारिक दुःखों से मुक्त होने के उपाय ढूँढने, उनका पता लगा कर उन्हें सारे देश में फैलाने, लोगों को कल्याण का मार्ग दिखाने और विश्वभ्रातृ-भाव फैलाने में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि उनका नश्वर शरीर तो मिट गया तथापि उनका यशःशरीर सदा के लिए अमर हो गया। आज हज़ारों वर्षों के बाद भी ५५ करोड़ मनुष्य 'बुद्धो मे शरणम्' कह कर अपने को कृतार्थ मानते हैं।

उनके मरने के पश्चात् बौद्ध धर्म सारे भारत में फैल गया। महाराज अशोक ने उसे लंका आदि देशों में पहुँचाया। क्रमशः तिब्बत, चीन, जापान आदि एशिया के कई देश बौद्ध धर्म के झंडे के नीचे आ गये। एक समय ऐसा था कि बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या सब धर्म वालों से अधिक थी। भारतवर्ष में तो शंकराचार्य आदि के प्रभाव से बौद्ध धर्म उठ गया किन्तु चीन, जापान, लंका, ब्रह्मा, तिब्बत आदि में अब भी बौद्धधर्म का राज्य अविकल चल रहा है। अब भारतवर्ष में भी बौद्ध धर्म के पुनरुद्धार का यत्न हो रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १६०० वि० में वाँदा जिले के राजापुर कस्बे में हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम दुवे और माता का नाम हुलसी था। इनका पहला नाम रामबोला था पर वैरागी होने पर तुलसीदास रक्खा गया।

काशी में शेष सनातन से विद्याध्ययन करने के वाद इनका विवाह हुआ। कहा जाता है कि इनका अपनी स्त्री पर वहुत अधिक प्रेम था। एक वार उसके मायके जाने पर ये भी उसके पीछे वहीं जा पहुँचे। इसपर इनकी स्त्री को लज्जा आई और उसने कहा—

"लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि-चरममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥"

यह वात इन्हें ऐसी लगी कि उसी समय घर छोड़ कर चल दिये और काशी जा कर वैरागी हो गये। गोस्वामीजी के हृदय में प्रेम का प्रवल प्रवाह वह रहा था। अव तक उसका झुकाव स्त्री की ओर था, परन्तु इस ज़रा सी वात से वह उधर से हट कर श्रीराम की ओर झुक गया और अन्त तक निरन्तर इसी दिशा में वहता रहा। इसी प्रेम-प्रवाह ने इन्हें अनन्त काल के लिए अजर-अमर कर दिया। सं० १६८० वि० में इन्होंने असी और गंगा के संगम पर यह नश्वर शरीर छोड़ा।

गोस्वामीजी के माहात्म्य और शक्ति के वारे में कितनी ही दन्त-कथायें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्हें हनुमानजी की कृपा से श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन हुए थे।

तुलसीदासजी ने अपने समय में प्रचलित हिन्दी के व्रज और अवधी दोनों रूपों और समस्त शैलियों में कविता की। इनकी सारी कविता लगभग राम पर ही आश्रित है। ये हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ और भारतीय जनता के प्रतिनिधि कवि थे। इनके ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. रामचरितमानस, २. विनय-पत्रिका, ३. गीतावली, ४. दोहावली, ५. कवित्तरामायण, ६. रामाज्ञा, ७. रामलला नहछू, ८. बरवै रामायण, ९. जानकी मंगल, १०. वैराग्य संदीपनी, ११. पार्वतीमंगल, १२. कृष्ण-गीतावली, १३. रामसतसई, १४. हनुमान बाहुक।

इनमें से रामचरितमानस सबसे बड़ा और सबसे प्रसिद्ध है। जितना यह सर्वप्रिय हुआ है उतना भारत में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं हुआ। आज सैकड़ों बरस बाद भी भारत के विस्तृत भूभाग में करोड़ों व्यक्तियों द्वारा रामचरितमानस जीवन की सब समस्याओं का समाधान करने वाला और अत्यन्त कल्याणकारी ग्रन्थ माना जाता है, और राजा से रंक तक सब के घर में इसकी एक प्रति विराजमान रहती है। जो स्थान संस्कृत में वेद और गीता का है, हिन्दी में वही स्थान रामचरित-मानस का कहा जाता है।

मीराबाई

यद्यपि भगवद्भक्ति के लिए देश और काल का कोई बन्धन नहीं है, क्योंकि सभी देशों में और सभी कालों में ईश्वरभक्त हुए हैं, तथापि हिन्दी साहित्य में संवत् १३७५ से १७०० तक का समय भक्ति के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि इस काल का नाम भक्तिकाल पड़ गया है। इस समय में कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, नाभादास, नन्ददास, हितहरिवंश आदि अनेक महात्मा हुए और साहित्य में भक्ति

की बाढ़ रही। भक्तशिरोमणि मीराबाई का प्रादुर्भाव भी इसी भक्ति-प्रधान समय में हुआ था।

मीराबाई जोधपुर राज्य के अंतर्गत मेड़ता प्रान्त के राठौर रतनसिंह की इकलौती पुत्री थीं। इनका जन्म संवत् १५५५ में हुआ। अपने दादा और पिता की परम्परा से इन्होंने वैष्णव भक्ति पाई थी। जब बच्चे गुड्डे-गुड्डियों से खेला करते हैं तब ये एक साधु द्वारा प्राप्त गिरिधरजी की मूर्ति से दिल बहलाती थीं।

इनका विवाह चित्तौड़ के सिसौदिया कुल-तिलक, महाराजा साँगा के कुँवर भोजराज के साथ हुआ। विवाह के अनंतर मीरा चित्तौड़ आ गईं। अब ये चित्तौड़ के भावी राणा की रानी थीं। इनका जीवन बड़ा सुखमय था। परन्तु दुष्ट विधि से इनका यह सुहाग न देखा गया। विवाह हुए अभी दस वर्ष भी नहीं बीते थे कि कठोर काल ने कुमार भोजराज को इस दुनिया से उठा लिया। इस घटना से मीराबाई के जीवन में भारी परिवर्तन हो गया। मारवाड़ की राजकुमारी और मेवाड़ की होने वाली महारानी इस भीषण आघात के कारण स्वेच्छा से दर-दर की भिखारिणी और प्रेम-दिवानी हो गई। मर्त्य पति की मृत्यु के अनन्तर ये मर्त्यलोक के सब नाते तोड़ अमर्त्य स्वामी गिरधरलालजी की सेवा में लग गईं। इनका आचार-व्यवहार बिलकुल विरक्त-साधुओं का सा हो गया। देश-विदेश के साधु महात्मा इनके सत्संग और कीर्तन में सम्मिलित होने को आया करते थे और इनके घर पर सदा भगवद्भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। संवत् १५८४ की सीकरी की लड़ाई में मीराबाई के पिता रत्नसिंह राठोड़ काम आये। अगले वर्ष मीराबाई के ससुर राणा साँगा भी चल बसे। तब उनके देवर राणा रत्नसिंह ने तीन वर्ष राज्य किया। रत्नसिंह के बाद उसका

सौतेला भाई विक्रमाजीत मेवाड़ का राणा बना। विक्रमाजीत को मीरा-वाई के महल में साधुओं का आना-जाना लोक-मर्यादा के विरुद्ध प्रतीत होता था, किन्तु भक्त लोग अपने को लोक मर्यादा से परे समझते हैं। मीरावाई तो गिरधर गोपाल के अतिरिक्त और किसी का अधिकार ही नहीं मानती थीं—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मौर-मुकुट मेरो पति सोई॥

इनके घरवालों ने इनकी इस मनोवृत्ति को वदलने के लिए वहुत कुछ उपाय किये। जिन सहेलियों को इनके विचार-परिवर्तन का कार्य सौंपा गया था वे मीरा पर कोई प्रभाव न डाल सकीं वल्कि स्वयं ही उनके रंग में रँग गईं। मीरा तो श्याम-रंग में रँगी हुई थीं, उनपर दूसरा रंग कैसे चढ़ सकता था।

जव समझाने-वुझाने के सव उपाय निष्फल गये तव इनको भग-वत्-चरणामृत के वहाने विप का प्याला भेजा गया। इन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक विप का प्याला पी लिया पर उससे भी उनका कुछ नहीं विगड़ा।

जव घर के लोगों की ओर से इनके मार्ग में और भी विघ्न-वाधाएँ उपस्थित की जाने लगीं तव ये अपने पीहर मेड़ता चली गईं। मेड़ता का शासक उस समय मीरावाई का ताऊ राव वीरमदेव था। राणा साँगा की मृत्यु के वाद राजस्थान में जोधपुर का मालदेव प्रवल हो उठा। उसने राव वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। इधर दिल्ली पर शेरशाह का अधिकार हो चुका था। शेरशाह ने मालदेव को दवाने के लिए जोधपुर की ओर कूच किया और मेड़ता में छावनी डाली। राव वीरमदेव मालदेव के विरुद्ध शेरशाह से मिल गया।

मेड़ता में जब मालदेव के उपद्रव हो रहे थे तभी मीरा मेड़ता

छोड कर वृन्दावन गईं, फिर वहाँ से द्वारका धाम को पधारीं। वहाँ श्री रणछोड़जी के मन्दिर में रह कर जीवन व्यतीत करने लगीं। इनकी मृत्यु संवत् १६०२ और १६०३ के बीच बताई जाती है।

मीरावाई का हृदय भक्ति रस से परिपूर्ण था। इनके हृदय-स्रोत से वही हुई भक्तिरस की सुधाधारा आज तक हिन्दी साहित्य को पवित्र कर रही है। इनकी अमर वाणी इनके हृदय में ईश्वर सम्बन्धी प्रेम की तीव्रता की द्योतक है। भारत की कवयित्रियों में वे शिरोमणि मानी जाती हैं और भारतीय स्त्रियों में इनका नाम गौरव की वस्तु है।

छत्रपति शिवाजी

हिन्दू-धर्म रक्षक वीर-शिरोमणि शिवाजी का जन्म सन् १६२७ ई० में पूना के निकट हुआ था। उनके पिता का नाम शाहजी और माता का नाम जीजावाई था। शाहजी एक साधारण से जमींदार थे। जीजावाई सुशिक्षित विदुषी थीं। जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय समस्त भारत मुसलमान विजेताओं द्वारा पादाक्रांत हो रहा था।

माता जीजावाई शिवाजी को रामायण और महाभारत से वीरों के चरित्र सुनातीं और हिन्दू धर्म की शिक्षा देती थीं। वाल्य-काल से ही हिन्दुओं की वीरता की उत्साह-वर्धक गाथाएँ सुन कर शिवाजी का हृदय अदम्य शौर्य्य और साहस से भर गया। वीस वर्ष की आयु तक उन्होंने अस्त्र-शस्त्र चलाना, कुश्ती लड़ना, घोड़े की सवारी और सेना संगठन करना सीख लिया था। इस तरह उन्होंने युद्ध के प्रत्येक विभाग में कौशल प्राप्त कर लिया था।

इन्होंने मराठों में एकता का मंत्र फूँका और उनका संगठन किया। मराठा सैनिकों का एक दल संगठित करके उन्होंने आस-पास के

किलों पर धावा मारना आरम्भ किया। पुरन्धर, तोरण, रैरी आदि कितने ही किले कुछ ही दिनों में ले लिये। बीजापुर का सुलतान शिवाजी की यह उन्नति देख कर मन ही मन चिन्तित होने लगा। उसने शिवाजी को पकड़ना चाहा, पर यह कोई आसान काम न था। जब सुलतान शिवाजी को पकड़ न सका, तो उसने उनके पिता शाहजी को कैद कर लिया, परंतु शिवाजी ने मुगल-सम्राट् शाहजहाँ के साथ पत्र-व्यवहार कर, उसके द्वारा बीजापुर-नरेश को शाहजी को मुक्त करने के लिए बाध्य किया।

तब सुलतान ने अपने एक प्रबल सेनापति अफजलखाँ को एक विराट सेना के साथ शिवाजी को वश में करने को भेजा और उसे यह आज्ञा दे दी कि शिवाजी को वन्दी करके ले आओ। अफज़लखाँ ने शिवाजी से संधि करने का प्रस्ताव किया और शिवाजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। शिवाजी उससे मिलने आये, पर बहुत ही सतर्क हो कर। उन्होंने शरीर पर लोहे का कवच धारण करके ऊपर सुन्दर अँगरखा पहन लिया। उन्होंने दाहिने हाथ में वघनखा लगा रक्खा था जो मुट्ठी बाँधने पर अँगूठी-सा मालूम होता था, पर हाथ खोल देने पर लोहे के बहुत पैने नाखून निकल आते थे। बाँयें हाथ में छोटी सी शस्त्री छिपाई हुई थी। उधर अफज़लखाँ भी अपने दाँव-घात में लगा था और अपनी कपट-युक्ति से उन्हें मारने के मनसूबे बाँध रहा था।

अफज़ल ने अपनी कपट-युक्ति से ज्यों-ही शिवाजी को मारने की तैयारी की त्यों ही उन्होंने अपना वघनखा अफज़ल के पेट में और शस्त्री पीठ में घुसेड़ कर उसका काम तमाम कर दिया। मराठों की सेना भी गुप्त रूप से तैयार खड़ी थी, वह शिवाजी का इशारा पाते ही बीजापुर की सेना पर टूट पड़ी और उसे मार भगाया। इसके बाद बीजापुर के सुलतान ने कई बार शिवाजी को परास्त करने का उद्योग किया, परन्तु

वह असफल रहा। अन्त में उसने शिवाजी की स्वाधीन सत्ता मान ली, और जो देश उन्होंने जीते थे उनका उन्हें शासक स्वीकार कर लिया।

इसके वाद शिवाजी का ध्यान मुगल साम्राज्य की ओर गया, और उस पर उन्होंने जहाँ-तहाँ आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। शिवाजी की वढ़ती हुई शक्ति को देख कर मुगल-सम्राट् औरंगज़ेव ने अपने मामा शाइस्ताखाँ और राजा जसवन्तसिंह को उन्हें दवाने के लिए भेजा। शाइस्ताखाँ शिवाजी के राज्य को जीतता हुआ पूना तक पहुँच गया और वहाँ शिवाजी के महल में ही ठहरा। शिवाजी ने अचानक एक दिन रात को शाइस्ताखाँ के महल पर हमला कर दिया, जिससे उसे पूना छोड़ कर भागना पड़ा।

अव औरंगज़ेव वहुत घवराया और शिवाजी को वश में करने के उपाय सोचने लगा। इस वार उसने जयपुर के राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। जयसिंह मुगल साम्राज्य के अग्रगण्य योद्धा था। उसके साथ दिलेरखाँ आदि प्रधान मुगल सेनापति भी थे। शिवाजी ने जयसिंह से संधि कर ली और मुगलों के जो दुर्ग जीते थे वे लौटा दिये। जव औरंगज़ेव ने शिवाजी और जयसिंह के वीच संधि का समाचार सुना तो उसने शिवाजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। जयसिंह के आश्वासन देने पर शिवाजी औरंगज़ेव के निमंत्रण को न टाल सके। सन् १६६६ में शिवाजी आगरा के लिए रवाना हुए। पर स्वागत करने के वदले औरंगज़ेव ने उनका अपमान किया, और उन्हें कैद कर लिया। शिवाजी भी कुछ कम चतुर न थे। वे अपनी चालाकी से मिठाई के एक टोकरे में वैठ, पहरे वालों को चकमा दे कर, वहाँ से निकल गये और अनेकों कष्टों और खतरों का सामना करते हुए कई महीनों के वाद रायगढ़ पहुँचे।

दक्षिण पहुँच कर शिवाजी ने फिर अपनी सेना का संगठन किया। औरंगजेब को दिये हुए कई दुर्ग उन्होंने फिर जीत लिये, और कई नए प्रदेश भी जीते। अब शिवाजी सब तरह शक्तिशाली और समर्थ थे। उन्होंने मुगल-सेनाओं को वारंवार परास्त किया। सन् १६७४ में शिवाजी ने नियमित रूप से देश का अधिपति बनने का आयोजन किया। रायगढ़ में छत्रपति नरेन्द्र की हैसियत से उनका राज्याभिषेक हुआ। इसके बाद उन्होंने दक्षिण में दूर तक अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई। कितने ही प्रबल दुर्गों पर उन्होंने अधिकार किया, और प्राचीन विजयनगर साम्राज्य के अधिकांश भाग को अपने राज्य में मिला लिया। बीजापुर और गोलकुंडा के राजाओं ने उन्हें कर देना स्वीकार किया। दक्षिण में उनका दबदबा बैठ गया। इस प्रकार अपने बुद्धिबल और बाहुबल से शिवाजी ने शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। सन् १६८० में ५३ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हुआ।

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध भी अत्युत्तम था। शासन के कार्य में वे उतने ही चतुर थे, जितने युद्धक्षेत्र में। राज्य-शासन के लिए उन्होंने एक सभा बनाई थी जिसका नाम "अष्ट-प्रधान" था। इसके आठ सदस्य थे। प्रत्येक सदस्य राज्य के एक-एक विभाग का संचालक होता था। इसी सभा की सलाह से शिवाजी राज्य कार्य करते थे।

कट्टर हिंदू, गो-ब्राह्मण सेवक, एवं हिंदू धर्म के भक्त होते हुए भी शिवाजी में धार्मिक असहिष्णुता का लेश न था। औरंगजेब के मथुरा काशी आदि तीर्थों को ध्वंस करने के समाचार सुनते रहने पर भी शिवाजी ने कभी किसी मुसलमान के विरुद्ध अमानुषिक अथवा पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं किया। कभी कोई मस्जिद नहीं गिरवाई। शत्रु की स्त्रियों के कैद हो जाने पर भी उन्होंने उन्हें आदरपूर्वक उनके सम्ब-

न्धियों के पास पहुँचा कर अपनी सहृदयता का परिचय एवं राजकीय विशेषताओं के होने के कारण ही शिवाजी ने वह काम कर दिखाया जो बहुत कम लोगों के लिए सम्भव है। इसलिए उनका नाम वड़े आदर और श्रद्धा से लिया जाता है तथा सदा आगे भी इसी तरह लिया जाता रहेगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्रत्येक प्राचीन धर्म में समय-समय पर सुधार की आवश्यकता पड़ती है। लोग धर्म के तत्त्व को भूल कर वाहरी आडंवरों में फँस जाते हैं। उन्नीसवीं शताव्दी के अन्त में हिन्दू-धर्म अन्ध-परंपरा और रूढ़िवाद का शिकार वन गया था। सामाजिक कुरीतियाँ वहुत वढ़ गई थीं। लोग वर्णाश्रम धर्म का असली तत्त्व भूल रहे थे। और उसको उन्होंने खान-पान के संकुचित नियमों में जकड़ रक्खा था। इन नियमों के कारण हिन्दू-समाज का क्षेत्र भी संकुचित होता जा रहा था। सामाजिक अत्याचारों से तंग आ कर लोग ईसाई और मुसलमान धर्म को स्वीकार करने लगे थे। उस समय हिंदू धर्म को ऐसे सुधारकों की आवश्यकता थी जो असली तत्त्व वतला कर लोगों को विधर्मी होने से वचा सकें। वंगाल के राजा राममोहन राय ने समय के अनुकूल हिंदू धर्म का संशोधन किया, किन्तु उस संशोधन से हिंदूधर्म के वहुत से असली तत्त्व भी निकल गये। स्वामी दयानन्द ने वेदों की मर्यादा को रखते हुए हिंदू धर्म में से वहुत-सा रूढ़िवाद हटा कर उसको एक ऐसा रूप दिया जो कि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारत-वासियों को ग्राह्य हो सकता था।

आविर्भाव काल

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात

प्रान्त के अन्तर्गत मोरवी नामक नगर में हुआ था। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण उनका नाम मूलशंकर रखा गया था। उनके पिता अंवाशंकर औदीच्य ब्राह्मण और नामी ज़मींदार थे। पाँच वर्ष की अवस्था होने पर मूलशंकर की शिक्षा का आरंभ हुआ। उस समय की प्रथा के अनुसार उन्होंने रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन आरम्भ किया। कुशाग्रवुद्धि होने के कारण १३ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उस समय तक वे अमरकोश और संस्कृत की अन्य छोटी पुस्तकों का अध्ययन कर चुके थे।

जन्म और शिक्षा

वाल्यावस्था में अपने पिता की भाँति उनमें भी वड़ी धर्मनिष्ठा थी। उनके पिता कट्टर शैव थे। शिवरात्रि के दिन उन्होंने व्रत रक्खा। पुत्र ने भी हठ-पूर्वक उनका अनुकरण किया। सारा दिन शिव की पूजा की और व्रती रहे। रात्रि के समय शिव-मन्दिर में और सव लोग तो सो गये परन्तु मूलशंकर को नींद न आई। इसी समय उन्होंने देखा कि एक चुहिया शिवजी की मूर्ति पर उछल-कूद मचा कर पूजा के अक्षत को खाने लगी। उनके मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठने लगीं। उन्होंने सोचा कि सर्वशक्तिमान जगदाधार महेश में एक चुहिया को भगाने की भी सामर्थ्य नहीं है? यही घटना उनके धार्मिक सिद्धांतों में परिवर्तन का कारण हुई।

विचार परिवर्तन

वीस वर्ष की अवस्था में मूलशंकर के चाचा का स्वर्गवास हो गया। इस मृत्यु का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे, क्या संसार में कोई अमर नहीं हो सकता? उनके हृदय में अनेक शंकाएँ उठतीं, परन्तु उनका समाधान करने वाला कोई नहीं था। इस समय उनमें कुछ वैराग्य की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई। थोड़े दिन वाद उनके पिता

ने उनको विवाह द्वारा सांसारिक वंधनों में वाँधना चाहा किन्तु उनका मन तो धार्मिक खोज में लगा था। वे विवाह का प्रस्ताव सुन कर घर से भाग खड़े हुए। उनके पिता ने सूचना पा कर सिद्धपुर के मेले पर उन्हें जा पकड़ा किन्तु तीसरे दिन रात को पहरेदार के सो जाने पर उपयुक्त समय पा कर वे फिर भाग गये और घूमते-घामते नर्मदा नदी के किनारे पहुँचे। वहीं उन्होंने स्वामी परमानन्द से संन्यास ग्रहण किया। इसी समय से उनका नाम दयानन्द सरस्वती पड़ गया।

संन्यास धारण करने के वाद कभी वेद का अध्ययन करते, कभी योग-साधन की कठिन क्रियाएँ सीखते, कभी व्याकरण पढ़ते, परन्तु उनके चित्त को शांति नहीं मिलती थी। इस प्रकार वे मथुरा पहुँचे और वहाँ स्वामी विरजानन्द सरस्वती को अपना गुरु वनाया। यद्यपि उनके गुरुदेव भौतिक नेत्रों की ज्योति से हीन थे तथापि उनके हृदय के नेत्र खुले हुए थे। वे प्रज्ञाचक्षु कहलाते थे और संस्कृत के अद्वितीय पंडित थे। उनके यहाँ स्वामीजी ने ढाई वर्ष तक विविध विषयों का अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर गुरुदेव ने कोई आर्थिक भेंट स्वीकार नहीं की, वरन गुरुदक्षिणा-स्वरूप यह वचन लिया कि वे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे।

विशेष अध्ययन

गुरु से विदा ले कर स्वामीजी कुम्भ के मेले पर हरद्वार पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी 'पाखंड-खंडिनी पताका' गाड़ी और व्याख्यान दे कर तीर्थयात्रियों को धर्म का सच्चा स्वरूप वतलाया। वहाँ से उन्होंने समस्त देश का पर्यटन करना आरंभ किया। स्थान-स्थान पर उन्होंने शास्त्रार्थ और व्याख्यानों द्वारा अन्ध-विश्वास, अज्ञान, अविद्या, दुराचार, पाखंड और कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। वे हरद्वार, आगरा, अजमेर, अहमदावाद, वंवई, पूना,

प्रचार कार्य

काशी, कलकत्ता आदि नगरों में गये और सब जगह उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। स्वामीजी ने सबसे पहले बंबई में आर्यसमाज की स्थापना की। काशी में अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्होंने अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमा दिया। इस प्रकार सारे देश में उनके वैदिक सिद्धांतों की दुन्दुभि का नाद सुनाई पड़ने लगा।

स्वामीजी बड़े निर्भय थे। समस्त देश में अपने उपदेशामृत की वर्षा कर उन्होंने राजपूताने की ओर दृष्टि फेरी। लोगों ने उन्हें मृत्यु का भय दिखा कर उधर जाने से रोकना चाहा, परन्तु वे डरने वाले नहीं थे। घूमते-घामते स्वामीजी जोधपुर पहुँचे। वहाँ के महाराज श्री यशवन्तसिंहजी स्वामीजी के उपदेश सुन कर उनके परम भक्त बन गये। एक दिन स्वामीजी ने उन्हें नन्हीजान वेश्या के प्रेम-रूपी दुष्कर्म से बचने की प्रेरणा की। वेश्या ने दूध में शीशा मिलवा कर रसोइये द्वारा स्वामीजी को दिलवा दिया। उससे स्वामीजी के शरीर में घोर पीड़ा हुई, किन्तु वे बड़े धैर्य और अलौकिक शान्ति के साथ अन्त समय तक उपदेश देते रहे। ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ५९ वर्ष की अवस्था में अपनी अक्षयकीर्ति छोड़ कर स्वामीजी ने स्वर्ग-यात्रा की।

उनकी मृत्यु

स्वामीजी निराकार ब्रह्म की उपासना पर ज़ोर देते थे। वे मूर्ति-पूजा, अवतार-वाद, तीर्थ, श्राद्ध और जातीय भेदभाव के कट्टर विरोधी थे। वर्ण-व्यवस्था को मानते थे, परन्तु जन्म के अनुसार नहीं, वरन कर्म के अनुसार। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, गो-रक्षा, समुद्र-यात्रा, शुद्धि और अछूतोद्धार के पक्ष-पाती थे। उन्होंने शारीरिक, सामाजिक और आत्मशक्ति के विकास करने का उपदेश दिया। वे बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के घोर विरोधी थे, सदाचरण

उनके सिद्धांत

और ब्रह्मचर्य के प्रतिपादक थे, स्वराज्य और स्वतन्त्रता के पक्के समर्थक थे; वास्तव में वे देश, समाज और राष्ट्र के सच्चे हितैपी थे। स्वामीजी की शिक्षाओं में हम बहुत से वर्तमान राजनीतिक आन्दोलनों का पूर्व-रूप पाते हैं। उनका कहना था कि 'सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदैव तत्पर रहो। यदि मेरी भी कोई बात झूठ हो तो उसे न मानो।' इससे उनके हृदय की विशालता और चरित्र की उज्ज्वलता झलकती है। वे शास्त्रों के अनुशीलन पर बड़ा जोर देते थे।

स्वामीजी ने हिन्दू-समाज में फैली हुई कुरीतियों और अंध-विश्वासों को दूर करने का प्रयत्न किया और इसी के लिए उन्होंने अपने प्राण तक दिये। अपने सिद्धांत के प्रचार और समाज-सुधार के कामों

उनके कार्य

को जारी रखने के लिए उन्होंने जगह-जगह आर्य-समाज की स्थापना की। आजकल आर्य-समाज काफी शक्तिशाली संस्था है। आर्यसमाज की तरफ से स्थान-स्थान पर स्थापित गुरुकुल, स्कूल, कालेज, अनाथालय और विधवाश्रम आदि उनकी कीर्ति को बढ़ा रहे हैं।

महात्मा गाँधी

जिन महापुरुषों के कारण आज भी भारत का नाम संसार में उज्ज्वल हो रहा है, उनमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी है। इनका जन्म गुजरात प्रांत के पोरबन्दर नामक स्थान में सन् १८६९ ई० में हुआ था। इनके पिता कर्मचन्दजी पहले पोरबन्दर और बाद में अन्य रियासतों के दीवान रहे। इनकी माता पुतलीबाई बड़ी भक्त थीं।

जब अभी ये स्कूल में ही पढ़ते थे और कुल चौदह वर्ष के ही थे

तभी माता-पिता ने इनका विवाह कर दिया था। थोड़े ही दिन बाद इनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु के दो वर्ष बाद सन् १८८७ में इन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। अब इनके बड़े भाई ने इन्हें इंगलैंड जा कर वैरिस्टरी पढ़ने की सलाह दी। स्त्री का गहना बेच कर इंगलैंड जाने की तैयारी की। इंगलैंड जाते समय इनकी माता ने इन्होंने मांस न खाने तथा शुद्ध आचरण रखने की प्रतिज्ञा करा ली थी। माता के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं को इन्होंने पूरी सचाई से निवाहा। बड़ी सादगी और कम खर्च में वहाँ गुज़ारा करते रहे। तीन वर्ष में कानून का अध्ययन समाप्त कर वैरिस्टरी पास करके सन् १८९१ में ये भारत लौट आये।

पहलेपहल ये वकालत में सफल न हुए। अदालत में जाते तो सब कुछ भूल जाते। पैरवी करने खड़े होते तो हाथ-पाँव काँपने लगते। निराश हो कर ये अपने घर राजकोट लौट आये।

इसी समय गुजरात के किसी प्रसिद्ध व्यापारी का मुकदमा दक्षिणी अफ्रीका में चल रहा था। मुकदमे की पैरवी करने के लिए उस व्यापारी ने इन्हें अफ्रीका भेजा। वहाँ इन्होंने दोनों दलों में समझौता करा कर मुकदमे का काम तो समाप्त कर दिया, पर साथ ही उस काम का श्रीगणेश कर दिया जिससे आगे चल कर इनका इतना नाम हुआ।

उन दिनों दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों पर बड़े अत्याचार होते थे। वे कुली कह कर पुकारे जाते थे। रेल के पहले दर्जे का टिकट खरीदने पर भी उन्हें तीसरे दर्जे में सफर करना पड़ता था। घोड़ागाड़ी में वे गोरों के साथ न बैठ सकते थे, उन्हें पायदान के ऊपर बैठना होता था। होटल में ठहर नहीं सकते थे, फुट-पाथ पर वे चल न सकते थे। रात को नौ बजे के बाद बिना परवाने के घर से न निकल सकते थे।

ज़मीन के मालिक भी वे न बन सकते थे। और तीन पौंड का कर दिये बिना वहाँ रह भी न सकते थे। इतने पर भी एक नया कानून पास होने लगा जिसके अनुसार ट्रांसवाल में रहने की इच्छा वाले भारतीय स्त्री-पुरुष तथा बालक-वृद्ध सभी को एक परवाना लेना पड़ता, जिसके लिए उन्हें दोनों हाथों की अँगुलियों और अँगूठे के निशान देने पड़ते, उनके शरीर के चिह्न नोट किये जाते और हमेशा यह परवाना साथ रखना होता। अफ्रीका के रहने वाले भारतीय इन अत्याचारों से तंग थे पर बेचारे विवश थे। महात्मा गाँधी से उन्होंने इन अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन करने को कहा। महात्माजी ने इस काम को अपने हाथ में ले लिया। इसके लिए उन्होंने कुछ उठा न रखा। कई बार गोरों से मार खाई, पठानों के हाथ से मरते-मरते बचे, सत्याग्रह किया, हजारों साथियों के साथ कई बार जेल गये; और भी पर्याप्त कष्ट उठाये पर पीछे नहीं हटे। अन्त में सरकार ने भारतीयों के कष्ट दूर करने का वचन दिया। इस तरह आठ वर्ष का जीवन अफ्रीका में व्यतीत कर वहाँ विजय पा कर ये भारत में वापस आये।

अफ्रीका से लौट कर इन्होंने भारतीयों को भी स्वतंत्रता पाने के लिए सत्याग्रह करने का पाठ पढ़ाया। देशवासियों को विदेशी सरकार से असहयोग करने, विदेशी वस्तुओं का त्याग करने तथा स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, विशेष कर हाथ का कता, हाथ का बुना कपड़ा पहनने को कहा। असहयोग आन्दोलन से देश में नवीन जाग्रति फैल गई; लाखों आदमियों ने खद्दर पहनना शुरू कर दिया। हज़ारों भारतीय इनके कहने से सन् १९२१, १९२२, १९३०, १९३२, १९४० तथा १९४२ में जेल गये। यरवदा जेल तो इनका घर ही बन गया। सन् १९३० में यह आन्दोलन इतना बढ़ा कि उस समय के भारत के वायसराय लार्ड

अरविन को इनके साथ समझौता करना पड़ा। उस समय जितने कैदी जेलों में थे, सब छोड़ दिये गये। गाँधीजी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में लंडन में गोलमेज़ कांफ्रेंस में सम्मिलित हुए, जहाँ उस समय यह फैसला हो रहा था कि भारतीयों को अपने देश में कौन-कौन से अधिकार दिये जायँ; भारत का शासन-विधान कैसा हो। वहाँ से आते ही इनको फिर सत्याग्रह प्रारम्भ करना पड़ा। इसपर इनको फिर गिरफ्तार किया गया। गोलमेज़ सभा में महात्माजी ने अछूतों के पृथक् निर्वाचन-अधिकार का घोर विरोध किया था क्योंकि इससे हिन्दू जाति के दो टुकड़े हो जाते थे। परन्तु प्रधान मंत्री मैकडानल्ड ने उन्हें पृथक् निर्वाचन का अधिकार दे दिया। इसके विरोध में जेल में रहते हुए महात्माजी ने प्रतिज्ञा की कि यदि वह पृथक् निर्वाचन-अधिकार रद्द न कर दिया गया तो मैं २० सितम्बर १९३२ से आमरण व्रत कर दूँगा। फलतः इन्होंने उपवास प्रारम्भ कर दिया। सब जानते थे कि महात्माजी अपनी बात के पक्के हैं, अतः सारे देश में गहरी हलचल मच गई। संसार इनके उपवास से काँप उठा। अन्त में महामना मालवीयजी के सभापतित्व में पूना में एक सभा हुई जिसमें यह समझौता हुआ कि हरिजनों का पृथक् निर्वाचन-अधिकार हटा कर उन्हें कौंसिल में अधिक स्थान दिये जायँ। तब सातवें दिन इन्होंने अपना उपवास त्यागा। इसके बाद इन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए सारे भारत का दौरा किया।

सन् १९२१ से इनके देहान्त तक अखिल भारतीय कांग्रेस की बागडोर इनके हाथ में ही रही या कहा जा सकता था कि महात्मा जी ही कांग्रेस थे। यद्यपि बम्बई कांग्रेस के समय से महात्माजी स्वयं कांग्रेस से सदस्य नहीं रहे, परन्तु कांग्रेस का कोई फैसला इनकी सम्मति के बिना नहीं होता था। जब कांग्रेस ने विभिन्न प्रान्तों में पहली बार

मंत्रि-मंडल वनाये थे तब सबकी नज़र शेगाँव—जहाँ महात्माजी उन दिनों रहते थे—की ओर ही रहती थी। वाद में महात्माजी की आज्ञानुसार सारे प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रियों ने त्यागपत्र दे दिये। गत महायुद्ध को महात्माजी का सहयोग प्राप्त नहीं था, वरन, उन्होंने अँगरेज़ों को भारत छोड़ जाने के लिए कहा। अपनी वात मनवाने के लिए वे अहिंसात्मक योजनाएँ तैयार कर रहे थे कि ९ अगस्त १९४२ को गवर्नमेंट ने उनको और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया। उनके जेल जाने पर प्रायः सारे भारत में विद्रोहाग्नि फैल उठी। सन् १९४५ में वायसराय ने इन्हें और कांग्रेस के अन्य नेताओं को जेल से रिहा कर दिया और इनकी 'भारत छोड़ो' की माँग को स्वीकार कर कांग्रेस को भारत के शासन का उत्तरदायित्व लेने का निमंत्रण दे कर वातचीत करने के लिए शिमला वुलाया। महात्माजी कांग्रेस के परामर्शदाता की हैसियत से शिमला गये। शिमला-कान्फ्रेंस सफल न हुई। तव इंगलैंड के तीन सचिव भारत आये। उन्होंने कांग्रेस को विधान-परिषद् में सम्मिलित हो कर स्वाधीन भारत का भावी विधान वनाने का निमंत्रण दिया। कांग्रेस ने महात्माजी के परामर्श को मान कर विधान-परिषद् में जाने का निश्चय किया। १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के दो टुकड़े करके अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया। पाकिस्तान और भारत के पश्चिमी प्रदेशों में साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनमें लाखों निरपराध व्यक्ति मारे गये। तव इन्होंने इस सांप्रदायिकता की आग को वुझाने का वीड़ा उठाया। इनके इस कार्य से असंतुष्ट हो कर एक पथ-भ्रष्ट युवक ने ३० जनवरी सन् १९४८ को गोली से इनकी हत्या कर दी। समस्त देश में शोक छा गया। १३ दिन शोक मना कर देश ने १२ फरवरी को राष्ट्र-पिता के फूल त्रिवेणी संगम में विसर्जन किये। समस्त विश्व ने इन्हें

श्रद्धांजलि अर्पित की।

असहयोग-आन्दोलन, खद्दर-प्रचार और हरिजन-उद्धार के अतिरिक्त इन्होंने सारे भारत में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार का कार्य भी प्रारम्भ करवाया। सुदूर दक्षिण तक हिन्दी का प्रचार इनके ही प्रयत्नों का फल है।

इन सब महान् कार्यों में ये इसी कारण सफल हुए और देश इनके कथन को जादू की तरह इसलिए मानता है, कि इनके जीवन का मूल मन्त्र सत्य और अहिंसा थे। ये सत्य की साक्षात् मूर्ति और अहिंसा के अवतार थे। सत्य को ये ईश्वर समझते थे। मन वाणी और कर्म से ये अहिंसा के पुजारी थे। यहाँ तक कि जो इनको दुःख देते थे उनको भी ये दुःख नहीं देना चाहते थे। अफ्रीका में कई वार गोरों ने इनका अपमान किया, इनको मारा-पीटा। सरकार उन गोरों पर मुकदमा चलाना चाहती थी, पर इन्होंने नहीं माना और उन्हें छुड़ा दिया। जब कभी इनके साथियों ने बुरा काम किया, तब इन्होंने उनको कुछ नहीं कहा, पर स्वयं उपवास करके प्रायश्चित्त किया। पतित की भी सेवा करना ये अपना सर्व-श्रेष्ठ कर्तव्य समझते थे। हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, अछूत, सबको ये समान समझते थे। गरीब भारतीयों को कपड़े पहनने को नहीं मिलते इसलिए ये एक कपड़ा पहन कर रहते थे। समस्त संसार में इनका नाम मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने भारत को दुनिया की नज़रों में बहुत ऊँचा उठा दिया।

पं० जवाहरलाल नेहरू

पं० जवाहरलाल नेहरू देश की आशा और उत्कृष्ट कोटि के नेता तथा महापुरुष हैं। आज वे केवल हमारे देश के ही सबसे बड़ा नेता

नहीं, समस्त विश्व में उनकी धाक है। अमरीका, इंगलैण्ड, रूस, चीन और इंडोनेशिया आदि सभी देश उनका आदर करते हैं। सचमुच जवाहर देश का जवाहर है, जिसने भारत का नाम सारी दुनिया में चमका दिया है। अपना समस्त जीवन उसने देश के स्वातंत्र्य-यज्ञ के लिए अर्पित कर दिया और आज उसमें सफल हो कर वह देश का सबसे बड़ा शासक है। समस्त देश अपने प्यारे जवाहर पर शासन का बड़ा भारी उत्तरदायित्व डाल कर निश्चिन्त हो गया है।

जवाहरलाल का जन्म १८८९ ई० में हुआ था। उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू देशभर में प्रसिद्ध वकील, योग्य नेता और संपन्न व्यक्ति माने जाते थे। वे बहुत अच्छे वकील थे, हज़ारों रुपये कमाते थे। जनता और सरकार दोनों में उनकी धाक थी। राजाओं की तरह आनन्द-विलास में रहते थे। पं० जवाहरलाल उनके पुत्र थे। बड़े लाड़-प्यार से इन्हें पाला गया। कई नौकर-चाकर इनकी सेवा में लगे रहते थे। एक सुशिक्षित अंग्रेज नर्स उनका पालन-पोषण करती थी। पाँच वर्ष की उम्र में ही अंग्रेज़ अध्यापिकाएँ उन्हें पढ़ाने के लिए रख दी गईं।

उन दिनों यद्यपि कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु अंग्रेज़ियत का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर इतना अधिक था कि उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड भेजना आवश्यक माना जाता था। अंग्रेज़ी वातावरण और संस्कृति मनुष्य-निर्माण के लिए ज़रूरी समझ पं० मोतीलाल नेहरू ने १५ वर्ष की उम्र में ही जवाहरलाल को शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैण्ड भेज दिया। वहाँ आप पहले हैरो स्कूल में पढ़े और फिर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में। विज्ञान में आपकी रुचि यद्यपि अधिक थी, परन्तु पिता आपको वैरिस्टर बनाना चाहते थे। आप वैरिस्टर

बन कर स्वदेश लौट आये। १९१६ ई० में आपका सुश्री कमला के साथ विवाह हुआ।

आप यद्यपि बैरिस्टर बन कर भारत में लौटे थे और यहाँ आ कर बैरिस्टरी शुरू भी कर दी थी, किन्तु उसमें आपका दिल नहीं लगा। यह वह समय था, जब गाँधीजी के नेतृत्व में भारत में असहयोग छिड़ रहा था और देश सचमुच एक अँगड़ाई ले कर उठ खड़ा हुआ था। अंग्रेजों से स्वाधीन होने की इच्छा लोगों में बलवती हो चुकी थी और वे गाँधीजी का नया संदेश पा कर कुछ कर गुज़रने को उत्सुक थे। पं० जवाहरलाल नेहरू का मन देश के इस आह्वान को सुन कर शान्त न रह सका। वह पं० मोतीलाल नेहरू के शानदार राजभवन को और सब सुख सामग्री तथा ऐश्वर्य को लात मार कर देश का एक सत्याग्रही सैनिक बन गया। खद्दर के मोटे कपड़े तन पर धारण कर जवाहरलाल ने भी स्वयंसेवकों की टोली में अपना नाम लिखा लिया। उस समय किसे पता था, कि आज का यह साधारण स्वयंसेवक कल भारत का प्रथम प्रधान मंत्री बनेगा।

इसके बाद का समस्त जीवन पं० नेहरूजी ने देश की सेवा में अर्पित कर दिया। १९२० से १९४५ तक लम्बे २५ वर्ष तक देश की वेदी पर दीवाना हो कर न जाने कितनी बार सत्याग्रह किया, सरकारी कानून तोड़े और न जाने कितनी बार जेल गया। इसने एक दिन आराम का नहीं बिताया। कोई वर्ष, कोई मास, कोई सप्ताह, कोई दिन और कोई घंटा ऐसा न बीतता, जब देश की चिन्ता इसे न सता रही हो।

देश के इस स्वातंत्र्य-संग्राम में पं० नेहरू के त्याग से प्रभावित हो कर समस्त परिवार ही यज्ञ में कूद पड़ा। वयोवृद्ध पिता पं० मोतीलाल नेहरू, वयोवृद्ध माता श्रीमती स्वरूपरानी, पत्नी कमला नेहरू और बहन श्रीमती विजय लक्ष्मी और कृष्णा नेहरू सभी स्वातंत्र्य-संग्राम के सैनिक

बन कर जेल गये। १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू बने; किन्तु इससे अगले ही वर्ष १९२९ में लाहौर के शानदार अधिवेशन में पं० जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की अध्यक्षता का भार अपने पिता से लिया। उन्हीं की अध्यक्षता में कांग्रेस ने अपना उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता का बना लिया। कांग्रेस ने आगामी वर्ष म० गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह का जो महान् संघर्ष छेड़ा, उसमें पं० नेहरू ने बहुत अधिक भाग लिया। वे कई बार जेल से छूटे और न जाने फिर कब गिरफ्तार हो गये। इसी स्वातंत्र्य-संग्राम के बीच उनकी पत्नी कमला नेहरू चल बसी। पं० मोतीलाल नेहरू भी इस संसार से चले गये और उनकी माता ने भी अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया, किन्तु पं० नेहरू इन सब कठिन विपत्तियों से भी विचलित न हुए। उनके देश-सेवा व्रत में कहीं शिथिलता नहीं आई।

१९४२ में वे अन्तिम बार जेल गये, जब 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा लगाया गया। इस बार वे ढाई साल तक जेल में रहे, परन्तु स्वराज्य को बहुत अधिक निकट ले आये। यूरोप का युद्ध १९४५ में समाप्त हो गया था और इंगलैण्ड में चर्चिल की जगह मजदूर सरकार ने ले ली थी। उसने भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम और अन्तरराष्ट्रीय परि-स्थितियों से विवश हो कर भारत को स्वराज्य देने का संकल्प किया और १९४६ में अन्तरिम सरकार भी बनाई। इस सरकार के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू बनाये गये। अगले वर्ष १९४७ में जब भारत को औपनिवेशक स्वराज्य मिला, तब भी आप प्रधान मंत्री रहे और २६ जनवरी १९५० को जब भारत ने अपने बनाये नवीन विधान के अनुसार लोकतंत्रात्मक राज्य का रूप धारण किया, तब भी आप ही भारत के प्रधान मंत्री रहे।

आपके प्रधानमंत्रिकाल में भारत पर जो आकस्मिक और कल्पनातीत विपत्तियाँ आईं, उनका सामना आपने अत्यन्त कुशलता से किया। पाकिस्तान ने लाखों हिन्दू सिख जनता को निकाल दिया, उन सब को आश्रय देने की समस्या अत्यन्त विकट है। कश्मीर पर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया। हैदराबाद में रजाकारों ने भारी उपद्रव किये और देश में भीषण अन्न संकट बढ़ा। इन सब का सामना आप कर रहे हैं।

१९४९ में आपको अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमरीका बुलाया था। वहाँ आपका बहुत शानदार स्वागत हुआ। आज दुनिया के अन्तर-राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त राजनीतिज्ञों में आपकी गिनती होती है और संसार किसी प्रश्न पर आपके विचार जानने को उत्सुक रहता है।

पं० जवाहरलाल नेहरू का स्वभाव बहुत सरल है। वे बच्चों से बहुत प्रेम करते हैं। साहित्य और विज्ञान में आपकी रुचि है। आपने 'विश्व इतिहास की झलक', 'हिन्दुस्तान की कहानी' और 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' आदि अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। विविध विषयों पर पचासों लेख भी आपने लिखे हैं। मंगलमय भगवान उन्हें चिरायु रक्खे ताकि भारत उनके नेतृत्व में सब कठिनाइयों को पार कर सके।

डा० राजेन्द्रप्रसाद

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद सादगी और सरलता के अवतार हैं। आपके विचार में, व्यवहार में, वेशभूषा में भारतीयता की अमिट छाप है।

आपका जन्म दिसम्बर सन् १८८४ में बिहार के सारन जिले के जीरादेई नामक गाँव में हुआ। आपके पिता का नाम मुंशी महादेव सहाय था और चाचा का नाम जगदेवसहाय। आपके चाचा की कोई

सन्तान नहीं थी। अतः वे आपको पुत्र के समान मानते थे। अपने भाई बाइनों में सब से छोटे होने के कारण आप प्रायः सभी के स्नेह-पात्र थे।

प्रारम्भिक शिक्षा आपने उस समय के रिवाज के अनुसार एक मौलवी साहब के मदरसे में पाई। उसके बाद छपरा जिला स्कूल में दाखिल हुए। एंट्रेंस परीक्षा में आप युनिवर्सिटी भर में प्रथम आये और आपको २० रुपये तथा १० रुपये की दो मासिक छात्रवृत्तियाँ मिलीं। उच्च शिक्षा के लिए आप कलकत्ता गये और वहाँ प्रेज़िडेंसी कालेज में दाखिल हुए। छपरा में रहते हुए आपका परिचय प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० विक्रमादित्य से हो गया था। उनकी प्रेरणा से आप घर पर ही संस्कृत भी पढ़ते रहे। इसलिए आपको फारसी के अलावा संस्कृत हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान हो गया था।

कालेज में पढ़ते हुए भी आप बड़े साधारण वेश में रहते थे। कुरता पाजामा पहन कर ही कालेज जाते थे। अपनी कक्षा में सदा प्रथम ही रहते थे। एफ़० ए० में प्रथम आने पर आपको ५० रुपये मासिक की छात्रवृत्ति मिली और बी० ए० में प्रथम आने पर ६० रुपये मासिक की। बी० ए० में आपने तीन विषयों में से दो में आनर्स भी किया। एम० ए० की परीक्षा से कुछ समय पहले ही आपके पिताजी की मृत्यु हो गई, इसके सिवाय एम० ए० के साथ साथ लॉ की पढ़ाई भी कर रहे थे अतः एम० ए० में आप सर्व-प्रथम न आ सके। फिर भी बड़े अच्छे नंबरों में पास हुए और मुजफ्फरपुर कालेज में प्रोफेसर हो गये। पर कुछ दिन बाद ही इस कार्य को छोड़ कर पुनः कलकत्ता जा आपने लॉ की परीक्षा दी और वहीं वकालत करने लगे। बाद में पटना हाईकोर्ट बनने पर आप पटना आ गये। वकालत में भी आप ने बड़ा

नाम कमाया।

१६२० के रौलट ऐक्ट के विरुद्ध असहयोग आंदोलन में आपने वकालत छोड़ दी और स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। इस समय से आप गांधीजी के प्रमुख सहायक या सेनापति थे। विहार में राष्ट्रीय संगठन का सारा श्रेय आपको ही है। विहार के आप एक-मात्र नेता थे।

कांग्रेस-कार्य-समिति के आप निरंतर सदस्य रहे। चार वार आपने कांग्रेस के अध्यक्ष-पद को सुशोभित किया।

राष्ट्रीय आंदोलन काल में आप अनेक वार जेल गये। पहले सन् १६३२ में छह मास के लिए; फिर १६३३ में पन्द्रह मास के लिए और अन्तिम वार सन् १६४२ से ४६ तक। अन्तिम जेल यात्रा की लंवी अवधि में ही आपने "इंडिया डिवाइडेड" (खंडित भारत) तथा अपनी 'आत्म कथा' को लेख-बद्ध किया।

१६४६ में आप अन्तरिम सरकार के खाद्य मंत्री नियुक्त हुए। भारत के विभाजन के वाद स्वतंत्र भारत का विधान तैयार करने वाली विधान परिषद की स्थापना पर आप उसके अध्यक्ष चुने गये। ढाई-तीन साल तक इस क[illegible] उन्हें [illegible]ने वड़ी योग्यता से निवाहा। २६ जनवरी १६५० से नर्वमेंट काले [illegible]लू होने पर आप देश के प्रथम राष्ट्रपति वने। आज भी आ[illegible]उस पद को सुशोभित कर रहे हैं। इस पद पर यह आप की दूसरी वारी है।

हिन्दी से राजेन्द्र वावू को वड़ा प्रेम है। यद्यपि पढ़ाई आपकी फारसी से शुरू हुई थी पर ऊपर वताया जा चुका है कि छपरा स्कूल में पढ़ते हुए आपने घर पर ही संस्कृत हिन्दी पढ़ी थी। कालेज में पढ़ते समय हिन्दी की ओर आपका विशेष झुकाव हुआ। कलकत्ता हिन्दी परिषद् में आप शुरू से प्रमुख भाग लेते थे। अखिल भारतीय हिन्दी

साहित्य सम्मेलन के वनारस में होने वाले प्रथम अधिवेशन में आप स्वागतकारिणी समिति के प्रधान मंत्री वने। १९३६ में नागपुर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति थे। अपनी 'आत्मकथा' तथा 'वापू के चरणों में' आदि पुस्तकें आपने हिन्दी में ही लिखी हैं।

कठोर परिश्रम आपका अनोखा गुण है। आपका एक एक क्षण निश्चित रूप से वँटा रहता है। प्रातः चार वजे से उठ कर रात तक आप किसी न किसी काम में व्यस्त रहते हैं। चरखा कातना और वच्चों से खेलना भी उसमें शामिल है।

आपकी सादगी और स्वभाव की मधुरता सव को मोह लेती है। महात्मा गाँधी के शब्दों में "राजेन्द्र वावू का जैसा विनम्रता-पूर्ण व्यवहार और प्रभाव है, वैसा कहीं भी, किसी भी नेता का नहीं है।" भारत का सर्वोच्च मान पा कर भी अभिमान आप को छू नहीं गया। आपकी सवसे वड़ी विशेपता है आपका भारतीयपन। आप देश के उन इने-गिने नेताओं में से हैं जो देश की समस्याओं का भारतीयता की दृष्टि से चिन्तन करते हैं, पश्चिम के अंधानुकरण पर वल नहीं देते। महात्मा गाँधी की विचार-धारा के आप पूर्णतया समर्थक और आपका जीवन, आपका व्यवहार तथा संस्कार सभी भारतीय हैं।

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतराय का नाम लेते ही सहसा मुख से 'शेरे पंजाव' या 'पंजाव केसरी' निकल पड़ता है। यह उपाधि पहले महाराज रणजीतसिंह के लिए थी, जिन्होंने कावुल तक का इलाका पठानों से जीता था और जिनके भय से अंग्रेज़ सतलुज पार करने का साहस नहीं करते थे। लाला लाजपतराय ने भी आजीवन व्रिटिश सत्ता का वड़ी निर्भयता

साहस और धैर्य से मुकावला किया, इसी लिए जनता ने आपको इस उपाधि से गौरवान्वित किया।

लालाजी के पूर्वज लुधियाना जिला के जगराँव नामक शहर के निवासी थे। यह शहर लुधियाना और फिरोजपुर के वीच में है। लालाजी का जन्म सन् १८६४ के अंत में उनकी ननिहाल ढुडेके ग्राम में हुआ जो फिरोजपुर से ५ मील की दूरी पर है।

लालाजी के पिता श्री राधाकृष्ण सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। नार्मल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में वे पंजाव भर में प्रथम आये थे। लालाजी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई और अपने पिताजी की तवदीली के साथ साथ आप रोपड़ लुधियाना आदि कई स्थानों पर शिक्षा पाते रहे। अंत में अंवाला से आपने मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा पास की।

आपके पिताजी का वेतन केवल २५ रुपए से ३५ रुपए मासिक तक ही रहा। परिवार उनका काफी वड़ा था। अतः आपकी उच्च शिक्षा आपके पिताजी के लिए काफी चिन्ता का विपय था। फिर भी जैसे तैसे उन्होंने आपको उच्च शिक्षा के लिए लाहौर भेज दिया, वहाँ आप युनिवर्सिटी-गवर्न्मेंट कालेज में भरती हुए। आपके पिता आपको केवल ८-१० रुपये मासिक ही भेज पाते थे। ३ रुपये आपको युनिवर्सिटी से छात्रवृत्ति में भी मिलने लग गये थे। इंटर की पढ़ाई के साथ आप वकालत के स्कूल में भी दाखिल हो गये। इस लिए इन १२-१३ रुपये में वड़ी मुश्किल से निर्वाह कर पाते थे। ६ रुपये मासिक तो कालेज और वकालत की फीस में ही चले जाते थे। वकालत की पुस्तकें भी काफी मँहगी होती थीं, पर आप कुछ पुस्तकें माँग कर और कुछ पुरानी खरीद कर गुज़ारा करते थे। कई वार आप दिन में केवल एक वार ही भोजन कर

पाते थे। आर्थिक संकट तथा प्रतिकूल परिस्थितियों ने आपको सुझाया कि कालेज की पढ़ाई की अपेक्षा वकालत पास कर आजीविका का प्रबन्ध करना आपके लिए अधिक आवश्यक है। एक वर्ष के कठोर परिश्रम के बाद आप मुखतारी के योग्य तो बन गये पर साथ ही पीलिया के शिकार भी हो गये। वकालत की पढ़ाई पीलिया की बीमारी तथा सार्वजनिक जीवन में पड़ जाने के कारण आप एफ० ए० में पास न हो सके और जगराँव में जा कर मुखतारी का काम करने लगे। कुछ दिन बाद वहाँ से रोहतक चले गये और वहाँ मुखतारी करते हुए आपने एल-एल० बी० की परीक्षा पास की। दो वर्ष रोहतक रहने के बाद आप हिसार चले गये और वहाँ स्थिर रूप से प्रैक्टिस करने लगे। लगभग छह वर्ष हिसार में रह कर आप पंजाब की राजधानी लाहौर में आ गये। इस समय आप की प्रैक्टिस खूब जम गई थी।

लालाजी का सार्वजनिक जीवन लाहौर में पढ़ते समय हिन्दी आंदोलन से शुरू हुआ। अभी आप पूरे अठारह वर्ष के भी नहीं हुए थे कि सन् १८८२ में अंबाला में आपका हिन्दी के पक्ष में सर्वप्रथम सार्वजनिक भाषण हुआ। उसके बाद आप हिन्दी के पक्ष में एक मैमोरियल के लिए सहस्रों हस्ताक्षर करवाने में जुट गये। कालेज में आपके सहपाठी थे—श्री गुरुदत्त विद्यार्थी तथा लाला हंसराज। अपने इन दोनों मित्रों तथा उस समय के आर्य-समाज के प्रधान लाला साईंदासजी की प्रेरणा से आप भी आर्यसमाज में दाखिल हुए और उसके बाद जी-जान से उसके प्रचार में लग गये। आपकी गणना समाज के चोटी के नेताओं में होने लगी। लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के संस्थापकों में आप प्रमुख थे। कालेज तथा समाज के लिए अपने लाखों रुपया इकट्ठा किया। भाषण-कला में आपको अपूर्व कौशल प्राप्त था। श्रोताओं के हृदयों को

मंथित कर उसकी गहराई तक पहुँचने में आप बड़े निपुण थे। इसीलिए समाज के अधिवेशन में रुपये की अपील प्रायः आप से ही करवाई जाती थी। आप अपने प्रभाव से लोगों की गाँठों से हजारों रुपये निकलवा लेते थे। स्वयं दान देने में भी आप बड़े उदार थे। सन् १९०० में आपने घोषणा कर दी थी कि अब से वकालत से जो आय होगी सब दान कर दिया करूँगा। इसी के अनुसार कई वर्ष वह सारी आय डी० ए० वी० कालेज तथा समाज को देते रहे।

कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हुई। सन् १८८८ में इसका चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ। यहीं लाला लाजपतराय पहली बार कांग्रेस में शामिल हुए। इससे पहले सर सैयद अहमद के विरुद्ध, जो मुसलमानों को कांग्रेस में शामिल न होने को प्रेरित कर रहे थे, कुछ खुले पत्र लिख कर आप जनता के सामने आ चुके थे। यहीं से आपका राजनैतिक जीवन शुरू होता है। कांग्रेस के अवसर पर आप के दो भाषण हुए। आप पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कांग्रेस में अपना भाषण उर्दू में दिया। आपके भाषणों से सब लोग बड़े प्रभावित हुए। १९०४ में बम्बई में हुए कांग्रेस-अधिवेशन के निश्चय के अनुसार आपने श्री गोखले के साथ भारत के दृष्टि-कोण को अंग्रेज़ों के सम्मुख रखने के लिए इंगलैण्ड की यात्रा की। आपने इस यात्रा के लिए लिया तीन हज़ार रुपया भी बाद में लौटा दिया। इंगलैण्ड में जा कर आपने लेखों और भाषणों द्वारा अंग्रेज़ी जनता को भारत का दृष्टिकोण भली प्रकार समझाया।

वहाँ से लौटने पर लालाजी ने देखा कि भारत की दशा अच्छी नहीं है। बंगाल को दो भागों में बाँटा जा चुका है। उसके विरोध की आँधी में हज़ारों व्यक्ति जेलों में ठूँसे जा रहे हैं। पंजाब में भी भूमि

कर बढ़ा देने तथा एक अंग्रेज़ पुलिस सुपरिंटेंडेंट द्वारा एक मुसलमान पुलिस कांस्टेवल को सूअर उठा कर वँगले तक न पहुँचाने के अपराध में गोली मार देने से शोर मचा हुआ है। जिस 'पंजावी' समाचार-पत्र ने इस समाचार को छापा था, उसके सम्पादक और मुद्रक को भी दण्ड दिया गया। लालाजी ने सरदार अजीतसिंह के साथ मिल कर इन सभी वातों का विरोध किया। सरकार से शान्ति से विचार करने की प्रार्थना की। इस पर गोरे समाचार-पत्र लालाजी पर वरस पड़े। सरकार ने कचहरी जाते हुए लालाजी को पकड़ कर चुपचाप मांडले पहुँचा दिया। वहाँ उन्हें अकेला रख कर घोर कष्ट दिया गया। अन्त में आठ-दस महीनों के वाद आप वहाँ से छूट कर आये। देश ने आँखें विछा कर आपका स्वागत किया।

१९१४ में कराची के कांग्रेस-अधिवेशन के सुझाव के अनुसार लालाजी एक डैपुटेशन ले कर इंगलैंड गये। वहाँ उन्होंने पार्लियामैंट के सदस्यों के सम्मुख भारत की माँग रक्खी। डैपुटेशन तो लौट आया, किन्तु आप जापान चले गये। वहाँ से लौटने ही वाले थे कि यूरोपीय-महायुद्ध छिड़ गया। भारत-सरकार ने आपका भारत आना रोक दिया। अव आप वहाँ से अमरीका चले गये। पहले तो आपको वहाँ वड़ी कठिनाई हुई, परन्तु अपनी योग्यता, लेखों तथा भाषणों से आप वहाँ भी मान पा गये। आपने वहाँ 'तरुण भारत' नाम की एक वड़ी अनूठी पुस्तक लिखी। इससे आपकी प्रसिद्धि हुई और दूसरी कठिनाइयाँ भी सुलझीं।

अमरीका में रह कर आपने 'भारत' का दृष्टिकोण स्पष्ट किया। अंग्रेज़ों ने भारत के विषय में जो भ्रांतियाँ फैलाई हुई थीं, उन्हें दूर किया। भारत के प्रति मैत्री और सहानुभूति का भाव जागृत किया। अन्त में

युद्ध के वाद वे स्वदेश लौटे। भारत ने अपने इस वीर का हृदय से स्वागत किया। किन्तु अव लालाजी का स्वास्थ्य कुछ ढीला पड़ गया था। यहाँ आ कर फिर आप सार्वजनिक कार्यों में लग गये।

उन्हें कांग्रेस की घुटने-टेक नीति कभी नहीं भाई। मुसलमानों का सहयोग पाने के लोभ में नेता उनकी अनुचित माँगों के आगे भी झुक जाते। उनके बुरे कामों की आलोचना भी न कर सकते। सदा हिन्दुओं को दवाते चलते। तभी उन्होंने लीग के मुकावले में हिन्दू सभा का पोपण किया था। वे इस विपय में राजनैतिक नेताओं का सदा डट-कर विरोध करते आये।

अन्त में साइमन कमीशन का बहिष्कार करते लालाजी लाहौर स्टेशन पर पुलिस की लाठियों से घायल हो कर, कुछ दिन रोगी रह कर, इस संसार से चल वसे। यह १६ नवम्बर १९२८ की रात थी। भारत ने ही नहीं, समूचे विश्व ने इस वीर की मृत्यु पर आँसू बहाये। काश! आज की स्थिति में पंजाब का वह शेर जीवित होता, पंजाब की समस्याओं को सुलझाने में उससे वड़ी सहायता मिलती!

विनोबा भावे

विनोवा भावे जन्म से महाराष्ट्रीय सारस्वत ब्राह्मण हैं। इनका जन्म ११ सितंबर १८९५ को गागोदा ग्राम में हुआ।, माता पिता ने इनका नाम विनायक राव भावे रक्खा था। विनोबा नाम महात्मा गाँधी का दिया हुआ है। वे इन्हें इसी नाम से पुकारते थे।

इनके तीन छोटे भाई और एक बहन हैं। भाई बहनों में ये सबसे वड़े हैं। इनकी माता वड़ी धर्मपरायण और भक्त महिला थीं।

विनोवा पर माता के चरित्र और शिक्षाओं का वहुत प्रभाव पड़ा है। माता द्वारा सुनाई गई कहानियों से प्रभावित हो कर ही विनोवाजी ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया था और वे वचपन से ही कठोर जीवन विताने लगे।

गणित और संस्कृत की ओर इनकी विशेष रुचि थी। ये वड़े कुशाग्र वद्धि हैं। स्मरण शक्ति इनकी आश्चर्यजनक है। युनिवर्सिटी की परीक्षा देने के लिए वम्वई जाते हुए भुसावल स्टेशन पर उतर कर संस्कृत पढ़ने के लिए वनारस चल दिये। वनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय के समारोह पर महात्मा गाँधी का जो भाषण हुआ उससे यह वहुत प्रभावित हुए और महात्मा गाँधी के दर्शनों के लिए सावरमती आश्रम पहुँचे और वहाँ महात्मा गाँधी के रंग में ही रँग गये। अपने कठोर और तपस्वी जीवन से इन्होंने महात्मा गाँधी को भी वहुत प्रभावित किया। इनके सम्वन्ध में महात्मा गाँधी ने एक वार कहा था—"इस छोटी सी अवस्था में जो तेज और वैराग्य विनोवा ने प्राप्त किया है उसे पाने में मुझे कितने ही वर्ष लगे थे।"

वर्धा आश्रम खोलने के लिए महात्मा गाँधी ने इन्हें ही भेजा था। इन्होंने वहाँ आश्रमवासियों के लिए वड़े ही कठोर नियम वनाये थे। प्रातः ४॥ वजे से रात १० वजे तक सवको काम करना पड़ता था। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, अभय, सव के लिए समान भाव, स्वदेशीपन और छूत-छात का भेद न करना इन ग्यारह व्रतों का पालन आश्रम में आवश्यक था।

सत्याग्रह आंदोलन में ये कई वार जेल गये। १९४८ में महात्मा गाँधी के स्वर्गवास के वाद उनके सर्वोदय आन्दोलन के कार्य को इन्होंने ही सम्हाला है।

विनोबाजी की विशेष प्रसिद्धि उनके भूदान आन्दोलन से हुई है। यह आंदोलन सन् १९५१ में हैदराबाद में शुरू हुआ। विनोबाजी वहाँ अपने साथियों सहित सर्वोदय सम्मेलन के लिए गये थे। पर वहाँ के गाँवों के किसानों की हालत देख कर वे आश्चर्य में आ गये। वहाँ भूमि के मालिक कुछ थोड़े से ज़मींदार थे। किसानों को खेती की मजदूरी में उपज का बीसवाँ भाग, वर्ष भर में एक कम्बल और एक जूता मिलता था। उनकी दुर्दशा देख विनोबा काँप उठे। बातचीत के दौरान में उन्हें पता लगा कि यदि उस गाँव के हरिजनों को ८० एकड़ भूमि मिल जाय तो उनका निर्वाह हो सकता है और उनकी हालत सुधर सकती है। पहले तो उन्होंने सोचा भारत सरकार को इस सम्बन्ध में कह कर कोई कानून बनवाया जाय पर फिर उन्हें ध्यान आया कि इसमें तो बहुत समय लगेगा। पता नहीं सरकार इस सम्बन्ध में कुछ कर भी सके या नहीं। अतः उन्होंने स्वयं ही बड़े-बड़े ज़मींदारों से भूमि दान करने की प्रार्थना की। २ मास में उन्हें १२ हजार एकड़ भूमि दान में मिली। उसके बाद यह आंदोलन सारे देश में ही शुरू हो गया। विनोबा जी अपने साथियों सहित हर एक प्रान्त में घूम घूम कर भूमिदान माँगने लगे। मार्च १९५५ तक उन्हें ३७ लाख एकड़ भूमि दान में मिल चुकी थी। भूमि-दान के साथ ही सम्पत्ति-दान का आंदोलन भी शुरू हुआ। और अब तो ये आंदोलन देशव्यापी हो गये हैं। २ हज़ार से अधिक व्यक्ति इस कार्य में संत विनोबा के साथ हैं।

आज भी यह संत पैदल यात्रा द्वारा सारे देश में घूम-घूम कर भूमि-हीन किसानों के लिए भूमि माँग रहा है, और इसका निश्चय है कि देश में जब तक एक भी किसान भूमिहीन है इसका यह कार्य जारी रहेगा।

बादल की आत्मकथा

बालक, क्यों मेरी गर्जना सुन कर डर रहे हो ? मेरी बिजली की चमक से घबरा रहे हो ? मैं कोई भयानक वस्तु नहीं हूँ। मैं बादल हूँ। मेरी कहानी बड़ी रोचक है। क्या सुनोगे ? अच्छा, सुनो।

कभी समुद्र के किनारे खड़े हो कर ध्यान से देखना। वहाँ सूर्य की धूप से वाष्प-भरी हवायें निरंतर उठा करती हैं। यही मेरा जन्म का रूप है। पानी ही वाष्प बनता है। उसी वाष्प रूप में मैं धीरे धीरे ऊँचा उठता चलता हूँ। ऊपर बहुत दूर आकाश में जा कर शीतल वायु लगने से मेरा काला काला वा श्याम रूप बन जाता है। फिर वायु मुझे धकेल धकेल कर इधर उधर ले जाती है। मेरे ही कई भाग सभी ओर फैलने लगते हैं। कभी कभी बहुत दूर तक सारे आकाश को ही घेर लेता हूँ। मेरे भाग वायु के वेग से परस्पर टकरा कर बज उठते हैं, यही मेरी गर्जना है। इस टक्कर से जो आग सी निकलती है, यही बिजली कही जाती है। फिर मैं ही वर्षा की धाराओं में फूट पड़ता हूँ। बरस बरस कर धीरे धीरे समाप्त हो जाता हूँ।

हाँ, कभी कभी सचमुच मैं भयानक हो उठता हूँ। वायु का वेग जब आँधी अथवा तूफ़ान का रूप धारण कर लेता है, बहुत ठंड के कारण मेरे अंग जम जाते हैं, तब मेरे अंगों की टक्कर से बड़ा भयानक शब्द होता है। उस गर्जना से सारा संसार काँप उठता है। साथ ही उस टक्कर से उत्पन्न बिजली वा आग भी कड़क के साथ नीचे आ गिरती है। वह जहाँ भी गिरती है, पृथ्वी के उस भाग को चीर डालती है। महल हों या पर्वत, वृक्ष हों या भूमि का कोई भाग, मनुष्य हों वा पशु, वह आग सब को चीरती फाड़ती जला डालती है। मेरी जल-धारा

भूमि पर प्रवाह वहा कर नगरों ग्रामों वा खेतों को नष्ट कर देती है। नदियों वा दरियाओं में तूफान उमड़ आता है। बाँध टूट जाते हैं। हज़ारों व्यक्ति वा जीव उसमें वह जाते हैं। कभी तो मेरे जल-प्रवाह के भार से पृथ्वी अपना सन्तुलन खो बैठती है। उसमें कँपकँपी आ जाती है। वह जोर से हिल कर नगरों को भीतर धँसा लेती है। कहीं भूमि भीतर धँस जाती है तो कहीं ऊपर को उभर आती है। कभी मैं वर्षा की धारा न बन ओलों वा वर्फ के छोटे छोटे टुकड़ों के रूप में जोर से वरस पड़ता हूँ। उस समय सारा संसार मारे भय के भगवान भगवान कह कर चिल्ला उठता है। पर्वतों पर मैं रुई के रूप में कोमल वर्फ बन कर धीरे धीरे गिरता रहता हूँ।

किन्तु, बालक, डरो नहीं। मैं सदा वैसा भयानक नहीं होता। साधारणतया संसार मेरे दर्शनों के लिए तरसा करता है। गर्मी की ऋतु में जब नदी-नाले सूखने लगते हैं, कुओं तक का पानी समाप्त होने लगता है, लू झुलसाये डालती है, पशु प्यास से तड़पने लगते हैं, पक्षी मुँह खोले दूर आकाश की ओर ताकने लगते हैं, तुम लोग घरों के भीतर छिपे गर्मी और प्यास के मारे तड़पने लगते हो, तब सारा संसार बड़ी उत्सुकता से मेरी प्रतीक्षा करता है। पण्डित यज्ञ रचाते हैं, किसान आकाश में दोनों हाथ उठा कर मेरे आने की प्रभु से माँग करते हैं, मनुष्य दान-पुण्यों से मुझे पुकारने का प्रयत्न करते हैं। मेरे आते ही खुशी से फूले नहीं समाते। यह वर्षा का सुहावना समय 'वरसात' नाम से पुकारा जाता है।

तुम्हारी तरह मेरी भी रचना परमात्मा ने एक विशेष उद्देश्य से की है। मैं संसार की रचना में मुख्य और प्रथम साधन हूँ। मैं संसार को जल पहुँचाता हूँ। गर्मी को दूर कर भूमि को भी हरा-भरा

बनाता हूँ। धान, मक्की, ज्वार, बाजरा आदि सारे अन्नों को उपजाकर संसार के जीवों का पेट भरता हूँ। फूलों फलों की वृद्धि करता हूँ। पर्वतों पर जड़ी-बूटियों को जन्म देता हूँ। प्रायः सारा वर्ष संसार को जल पहुँचाने का सारा प्रबन्ध मेरे ऊपर है। पर्वतों पर मेरे द्वारा गिराई गई बरफ सारा साल पड़ी रहती है; वही पतली पतली अनेक जल-धाराओं में बहते नदी-नालों का रूप धारण कर लेती है। ये नदियाँ ही भूमि को सींचती, जीवों की प्यास बुझाती तथा खेतों को उपजाऊ तथा हरा भरा रखती हैं। झरने भी मेरा ही रूपान्तर हैं। इस प्रकार सारा वर्ष मैं समुद्र से उठ कर बहुत ऊँचे आकाश में पहुँच कर वर्षा, बर्फ, झरना, झील वा नदियों के रूप में बहता फिर सागर में जा पहुँचता हूँ।

सूर्य भी मेरी सहायता करता है। उसी की किरणें मुझे जन्म देती हैं। अकेले सागर से ही नहीं, पृथ्वी पर जहाँ भी जल होता है, जिस रूप में भी होता है, सूर्य की किरणें उसे वाष्प में बदलती रहती हैं। सच पूछो तो वायु, अग्नि, तथा सूर्य की सहायता से मैं ही संसार की रचना, पालन तथा विनाश सभी कुछ करता रहता हूँ। जहाँ मैं नहीं होता, वहाँ रेत ही रेत हो जाती है। वहाँ जीवों की तो कौन कहे, वनस्पति तक का नामोनिशान नहीं होता। वहाँ उजाड़ ही उजाड़ होता है। मेरी शक्ति से भूमि हरी-भरी, उपजाऊ तथा जीवों से भरी शोभा-शालिनी बन जाती है। मेरी तनिक सी कुदृष्टि इस भूमि को नष्ट-भ्रष्ट भी कर देती है। मैं श्यामसुन्दर भी हूँ और प्रलय का बादल भी। यही मेरी आत्म-कथा है। क्यों कुछ अच्छी लगी ?

रुपये की आत्म-कथा

मैं रुपया हूँ। संसार मेरी माला जपता है। मुझे प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करता है। मेरी आशा से सदा यत्नशील रहता है। मेरे दर्शनमात्र से खिल उठता है। गृहस्थ हो या संन्यासी, महात्मा हो या दुरात्मा, बच्चा हो वा वृद्ध, किसान हो या भूमिपति, साहूकार या दरिद्र सभी मुझे ललचाई दृष्टि से देखते हैं। मुझे पा कर अपने को धन्य मानते हैं।

मेरे भी उस सर्वशक्तिमान प्रभु की तरह अनन्त रूप हैं। मैं कभी चाँदी के गोल रूप में रहता हूँ; कभी सुवर्णमुद्रा के रूप में विश्व का मन हर लेता हूँ; कभी छोटे-बड़े नोटों के रूप में मेरी गणना होती है; कभी लोग मेरा नाम चैक हुण्डी आदि भी रख लेते हैं। कहीं मुझे डालर, कहीं पौंड, कहीं रुबल आदि अनेक नामों से स्मरण भी करते हैं।

विश्व का चालक मैं हूँ। मेरी प्राप्ति की साधना में बच्चे स्कूल भागे जाते हैं; युवक कालिजों में शिक्षा पाते हैं; डाक्टर, वैद्य, इंजनी-यर, अध्यापक सभी का एकमात्र लक्ष्य मैं हूँ। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा सब जगह चढ़ावे या पूजा में, दान-दक्षिणा में, उपहारों में, मेरी ही पूछ होती है। मेरे बिना मज़दूर बात नहीं करता; हलवाई दुकान पर खड़ा नहीं होने देता; पुजारी पीठ फेर लेता है; मित्र पहचान नहीं पाता। संक्षेप में सारा विश्व मेरी भावना से गति पाता है—अपने अपने व्यवसाय में लगता है।

मेरी अपनी साधना भी अनोखी है। युगों पृथ्वी में धातुओं के रूप में—सोने चाँदी के नाम से गड़ा रहता हूँ। समझदार परिश्रमी मुझे

वहाँ से निकालते हैं। मुझे अग्नि में डाल कर शुद्ध करते हैं। वहाँ मैं गल कर पानी-पानी हो जाता हूँ। फिर मुझे मनमाने रूपों में काटा जाता है। मेरे छोटे वड़े गोल चपटे रूप घड़े जाते हैं। कई मशीनों में मुझे दवाया जाता है। कहीं रगड़ा भी जाता है। कहीं मुझ पर अक्षरों वा चित्रों को अंकित किया जाता है। कई वार तो 'मैं' अनेक धातुओं के मिश्रण से वनता हूँ। इतनी साधना वा तपस्या के वाद मुझे वह लुभावना रूप प्राप्त होता है, जिसे देख विश्व मुग्ध हो कर कह उठता है—दादा वड़ा न भैया, सवसे वड़ा रुपैया। नोट पाँच का, दस का, सौ का, वा हजार का; यह रूप भी मुझे वड़े कष्ट से मिलता है। मेरा कागज साधारण नहीं होता। इसकी रचना भी अनोखी होती है। कई पदार्थों को मिला कर उसके वीच में कई विशेप चित्र वा संकेत रखे जाते हैं। अनेक मशीनों पर विविध रंगों में मुझे छापा या सजाया जाता है। अतः यह अनोखा मान पाने के लिए मेरी अपनी साधना भी किसी तपस्वी से कम नहीं।

तभी तो मेरी शक्ति अनोखी है। जिसके पास मैं पहुँच जाता हूँ, उसको सुखी वना देता हूँ। उसे सुन्दर घर मिल जाता है; अन्न, फल, मेवे, दूध, मलाई सभी उसे सुलभ हो जाते हैं। सुन्दर वस्त्रों से वह शरीर सजाता है। समाज में सव कहीं उसका मान होता है।

योजनाएँ वा व्यवसाय भी मैं ही चलाता हूँ। मेरी कृपा से सेठ की दुकान चलती है। उसके कारखानें तथा मिलें चलती हैं। राज्य वा राष्ट्र अपनी योजनाओं की सफलता के लिए पहले मेरी माँग करते हैं। मेरी कृपा से भाखड़ा-नंगल योजना वनी है। मैंने नंगल के सड़े, गैर-आवाद तथा पिछड़े क्षेत्र को यह शोभा प्रदान की है। चण्डीगढ़—जो आज पंजाव की राजधानी है, जिसकी शोभा पर आज के शासक गर्व करते हैं,

जिसके सुन्दर प्रासादों तथा राजमार्गों को देख कर आश्चर्य होता है, सब मेरी शक्ति का चमत्कार है।

विश्व में 'अमरीका' आज एक शक्तिशाली देश है। क्यों ? वह मेरी निवासभूमि है। मेरी उस पर कृपा है। मैं ही उसकी शक्ति हूँ। शस्त्र तथा नए आविष्कार मुझपर ही निर्भर करते हैं। वड़ी-वड़ी लड़ाइयाँ मेरे द्वारा ही लड़ी जाती हैं।

शुभ कर्म भी मेरे ही द्वारा पूरे होते हैं और दुष्कर्म भी। दान-दक्षिणा पूजा में भी मैं ही काम आता हूँ, और रिश्वत भी मेरे ही द्वारा चलती है। सम्मान भी लोग मेरी कृपा से पाते हैं और वदनाम भी मुझे ही पा कर होते हैं। मनुष्य में उदारता भी मेरे ही द्वारा आती है और कंजूसी भी। भाव यह है 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु (मम) मूरति देखी तिन तैसी'।

दूसरे शब्दों में आज के युग का मैं ही भगवान हूँ। मैं रुपया हूँ। मेरी उपासना करो। मेरी पूजा करो। मेरी प्राप्ति का यत्न करो। तभी जीवन में सुखी हो पाओगे। कोठी, वँगला, कार, सुन्दर पत्नी—सभी कुछ मेरी कृपा से ही मिलेगा।

प्रभु-प्राप्ति के जैसे अनेक साधन हैं—सन्ध्या, पाठ-पूजा, यज्ञ, दान, स्वाध्याय, गुरु-सेवा आदि; वैसे ही मेरी प्राप्ति के भी अनेक साधन हैं। कठोर परिश्रम, विद्या, शिल्प, स्वामिभक्ति, व्यापार, झोलीचुक्की, मक्कारी, उच्च-पद। समय समय पर किसी भी उपाय के प्रयोग से मेरी प्राप्ति हो सकती है। जैसे प्रभुभक्त तनिक सी भूल या असावधानता से अपनी भक्ति खो वैठता है; वैसे ही आलस्य, अपव्यय, अहंकार, असावधानता, आदि दोपों से मैं भी हाथ से निकल जाता हूँ। मेरे भक्त को भी सावधान हो कर—इन दोपों से वच कर मेरी रक्षा करते

रहना चाहिये। अन्यथा मैं किसी के यहाँ अधिक देर नहीं टिकता। प्रातः किसी की जेव में होता हूँ, तो रात को वीसों जेवों से होता हुआ कहीं जा पहुँचता हूँ। 'लक्ष्मी' मुझे ही कहते हैं। दीपावली पर मेरी ही पूजा होती है। मुझे स्थिर रखने के लिए गीत गाये और उत्सव रचे जाते हैं। यही मेरी आत्म-कथा है।

स्वतन्त्रता दिवस—१५ अगस्त १९४७

१५ अगस्त का दिन! कितना हर्ष और उल्लास से पूर्ण दिन! यही तो वह दिन है, जव भारतवर्ष सदियों की पराधीनता के वाद स्वतंत्र वायु में साँस लेने लगा था, उसकी लोहे की शृंखलाएँ टूट गई थीं और अंग्रेज भारत पर से अपना खूनी पंजा हटाने पर विवश हुए थे।

हम पराधीन थे, पददलित थे, हम अपने देश में ही अपना शासन नहीं करते थे, हमें कोई पूछता न था, विदेशों में हमारा मान हो ही कैसे सकता था! हमारी दशा इतनी पतित हो गई थी कि हम स्वयं अपनी नज़रों में गिर रहे थे। हम अंग्रेजों की सभ्यता, संस्कृति, वेश-भूषा, भाषा और साहित्य आदि सभी को ऊँची दृष्टि से देखते थे और अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, वेशभूषा और भाषा को हीन दृष्टि से। किन्तु हम उठे, गिर कर उठे और लड़खड़ाये, फिर सँभले और अन्त में हम पूर्ण स्वतंत्र हो गये।

परन्तु यह किस तरह हुआ? इसकी भी एक लम्बी कहानी है; सुखों और दुखों, आशाओं और निराशाओं, सफलताओं और असफलताओं से पूर्ण कहानी है। आज से वहुत साल पहले, करीव सौ वर्ष पूर्व, अंग्रेजों के पाश से छूटने के लिए उत्तर भारत के विविध प्रान्तों के हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिल कर १८५७ ई० में अंग्रेजों

के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी। सफल होते होते हम उसमें असफल हो गये। उसके बाद आये ऋषि दयानन्द, राजा राममोहन राय आदि नेता, उन्होंने हमारे नैतिक और सामाजिक धरातल को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया और हममें आत्माभिमान की भावना का संचार किया। हम आत्मोद्धार की चेष्टा में लग गये। कुछ नेताओं ने भारतीयों को एक प्लेटफार्म पर खड़ा करने के लिए १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना की। इस संस्था ने भारतीयों की राजनैतिक उन्नति और स्वाधीनता की माँग शुरू की। दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाला लाजपतराय, महामना मालवीयजी, पं० मोतीलाल नेहरू, देशबंधु चित्तरंजनदास आदि कितने ही दिवंगत नेता इस स्वातंत्र्य-आन्दोलन का सक्रिय नेतृत्व करते रहे। म० गाँधी ने देश का नेतृत्व अपने हाथ में ले कर इसे आन्दोलन के बजाय संग्राम का रूप दे दिया और फिर हज़ारों की संख्या में भारतीय नर-नारी स्वातंत्र्य-यज्ञ में कूद पड़े। हज़ारों जेल गये, लाठियाँ और गोलियाँ खाईं, पर देश में एक अलख ज्योति जगा गये। इस संग्राम में हम कई बार असफल हुए, परन्तु प्रत्येक असफलता ने हमें नया उत्साह प्रदान किया। पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, श्रीराजेन्द्रप्रसाद, श्री राजगोपालाचार्य, श्री सुभाषचन्द्र वसु, श्री अबुलकलाम आज़ाद, आदि उस संग्राम के प्रमुख सेनापतियों में से थे।

एक ओर कांग्रेस के तिरंगे झंडे के नीचे सारा राष्ट्र स्वाधीन होने के लिए प्रयत्न कर रहा था, दूसरी ओर स्वतंत्रता के कुछ दीवाने जान को हथेली पर लिये हुए बम-पिस्तौल आदि का प्रयोग कर सरकार को आतंकित करने का प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे प्रयत्नों में न जाने कितने वीर भारतमाता के जयकार लगाते हुए उत्सर्ग हो गये। पिछले महा-

युद्ध काल में एक ओर श्री सुभाषचन्द्र वसु आजाद हिन्द सेना का संगठन करके एक महान् कार्य कर रहे थे, दूसरी ओर १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में समस्त देश के युवक और युवतियाँ कूद पड़े। हजारों ने अपने जीवन की वलि दे दी। सब का एक ही लक्ष्य था स्वाधीनता की प्राप्ति।

आखिर वह स्वाधीनता आई और आई १५ अगस्त १९४७ को। इस दिन अंग्रेज वायसराय नहीं रहा, अंग्रेज़ सेना न रही, गवर्नर जनरल की कार्यसमिति में एक भी अंग्रेज़ न रहा। भारतीय जनता के प्रतिनिधियों ने देश की शासन-सत्ता सँभाली और अपना विधान स्वयं वनाने लगे। लाल किले पर से यूनियन जैक, जो हमारी पराधीनता का निशान था, उतार दिया गया और पं० नेहरू ने तिरंगा झण्डा फहरा कर घोषित किया कि हम स्वाधीन हो गये। सारे देश में स्वाधीनता के उत्सव किये गये और क़रोड़ों देशवासियों ने रात को दिवाली मना कर स्वाधीनता का हर्ष मनाया। जलूस, जलसे हर्ष-प्रदर्शन के सभी उपाय वता रहे थे कि अव हमारा भारत स्वाधीन हो गया है, पराधीन नहीं रहा।

किन्तु, एक ओर हम यह रंगरलियाँ मना रहे थे; ठीक उसी दिन भारत के एक वड़े भाग में पश्चिमी पंजाव, सिंध और सीमा प्रान्त में तथा पूर्वी वंगाल में विनाश और विध्वंस का महान् तांडव खेला जा रहा था। अंग्रेज़ यहाँ से जाते जाते हमारे देश को दो टुकड़ों में वाँट गये थे और पाकिस्तान की धर्मान्ध जनता हिन्दू जनता के साथ खून की होली खेलने लगी थी। हज़ारों हिन्दू सिख मार दिये गये, हजारों हिन्दू स्त्री-पुरुष जीते जी जला दिये गये, लाखों करोड़ों रुपये की संपत्ति जला दी गई, हज़ारों वहनों का अपहरण किया गया, उनके साथ

बलात्कार और बर्बर व्यवहार किये गये। मानव सचमुच दानव बन गया था। मानवता दानवता में बदल गई थी।

इस तरह देश स्वाधीन तो हुआ, परन्तु खण्डित हो कर और स्वाधीनता की वेदी पर इतनी बड़ी बलि दे दी गई। फिर भी हम स्वतंत्र हो गये और देश के भविष्य का निर्माण करने के सब अधिकार हमारे हाथ में आ गये। पाकिस्तान से हिन्दू और सिख न जाने कितनी विपत्तियाँ झेल कर यहाँ आ गये।

यह है १५ अगस्त की कहानी—सुखों और दुखों, आशाओं और निराशाओं, सफलताओं और असफलताओं से पूर्ण कहानी।

गणतन्त्र दिवस—२६ जनवरी १९५०

१९२९ का वर्ष था, दिसम्बर की ३१ तारीख और रात के १२ बजे। लाहौर में रावी के तट पर कांग्रेस-पंडाल में पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत ने यह घोषणा की थी कि हम स्वतंत्र हो कर रहेंगे और पूर्ण स्वतंत्र हो कर रहेंगे। उसी दिन यह निश्चय किया गया था कि जनवरी महीने के अन्तिम रविवार को, जो उस वर्ष २६ जनवरी को पड़ा था, समस्त देशवासी यह प्रतिज्ञा करें कि पूर्ण स्वाधीनता हमारा अन्तिम लक्ष्य है और हम उसे ले कर रहेंगे। उस दिन से प्रतिवर्ष २६ जनवरी स्वाधीनता-दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है। कभी अधिक उत्साह से और कभी कुछ शिथिलता के साथ।

ठीक २० वर्ष बाद २६ जनवरी १९५० को देश ने पूर्ण स्वाधीनता का उत्सव सच्चे रूप में मनाया। देश स्वाधीन हो गया, औपनिवेशिक राज्य का नाम भी न रहा, देशवासियों द्वारा बनाया गया अपना विधान लागू हो गया और सरकारी भवनों पर केवल तिरंगा झण्डा फहराया

जाने लगा। २६ जनवरी १९३० को हम पराधीन थे, केवल एक इच्छा थी स्वाधीन होने की, पूर्ण स्वाधीनता को हमने अपना लक्ष्य बनाया था, और बीस वर्षों के उतार-चढ़ाव देखने के बाद २६ जनवरी १९५० को हम पूर्ण स्वतंत्र हो गये; हमारा देश संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बन गया—ठीक उसी रूप में जिस तरह रूस फ्रांस और अमरीका पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

(विद्यार्थियों के लिए सूचना—यहाँ १५ अगस्त वाले निबंध का अधिकांश भाग, जिसमें स्वाधीनता के प्रयत्नों का उल्लेख है, जोड़ा जा सकता है।)

१५ अगस्त को अंग्रेज़ सरकार ने हमें स्वतन्त्रता दी थी, किन्तु वह पूर्ण स्वतन्त्रता न थी। हम अंग्रेजी साम्राज्य के अंग थे, इंगलैंड का राजा हमारे देश का भी राजा था। गवर्नर जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति उसी की मुहर से होती थी। मुकदमों की अपील प्रिवी कौंसिल में सुनी जाती थी। किन्तु २६ जनवरी १९५० को भारतीयों द्वारा बनाया हुआ विधान लागू हो गया और हमने पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य बनने की घोषणा कर दी। अब हमारे देश में ऐसा विधान लागू है, जिससे भारत के प्रत्येक वयस्क स्त्री पुरुष को—ब्राह्मण या शूद्र, अमीर या गरीब सभी को—मत देने और शासन में भाग लेने का अधिकार है और यही सच्चा गणराज्य है।

लेकिन इसके साथ ही हमें यह भी समझना चाहिए कि स्वाधीन होने पर हमारी ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ गई हैं और हमें अब स्वयं राष्ट्र के एक सच्चे नागरिक की भाँति अपने देश की सर्वांगीण उन्नति करनी है। यदि हम सब अपने व्यक्तिगत या श्रेणीगत हितों की बलि दे कर राष्ट्र की उन्नति में लग जायँ, तो हमारा देश फिर संसार का सर्वोन्नत राष्ट्र बन जायगा।

नौका-यात्रा

एक बार शरद ऋतु में मुझे मथुरा जाने का अवसर मिला। साथ में सहपाठियों की एक बड़ी टोली भी थी। मथुरा के दर्शनीय स्थान देख वृन्दावन जाने का निश्चय हुआ, क्योंकि वृन्दावन धाम देखे बिना हमारी ब्रज-यात्रा अपूर्ण रहती। वृन्दावन जाने के कई साधन हैं। कोई रेल से जाते हैं, कोई इक्के ताँगों का सहारा लेते हैं, और कोई पैदल चल कर तीर्थ-यात्रा का पूरा पुण्य लाभ करते हैं। कुछ मनचले लोग नौका से भी जाते हैं। हम लोग नौका से भ्रमण करना चाहते थे। माँझी से पूछा कि नाव वृन्दावन जा सकती है या नहीं ? माँझी ने कहा—'हाँ'। उसके 'हाँ' कहते ही, बात की बात में, नौका से ही वृन्दावन जाने का प्रस्ताव छिड़ गया। वृन्दावन मथुरा से ऊपर की ओर है। बहाव के प्रतिकूल नौका को ले जाना हँसी-खेल नहीं है, किन्तु विद्यार्थी-जीवन के अदम्य उत्साह में भय और कठिनाई को स्थान नहीं मिलता। दो एक विद्यार्थी, जो तैरने की कला से नितान्त अपरिचित थे, इस प्रस्ताव का विरोध करने लगे। उनकी शंकाएँ निर्मूल बतला दी गईं। उन्होंने भी भीरु कहलाने के भय से प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बहुमत से पास किये हुए प्रस्ताव के पलट देने की भला किसकी हिम्मत थी ! प्रस्ताव पास हुआ और मल्लाह को वृन्दावन की ओर चलने की आज्ञा दी गई। वह नाव को किनारे के निकट लाया। उसके दो साथी और आ गये। बहाव के प्रतिकूल नाव को खे कर ले जाना कठिन कार्य है। इसलिए नाव में रस्सी बाँधी गई। दो नाविक उन रस्सियों को ले कर किनारे पर चलने लगे। इस प्रकार नाव ऊपर की ओर जाने लगी। उस वर्ष वर्षा अधिक हुई थी। आश्विन

मास में भी जमुना खूव चढ़ी हुई थी। वायु शीतल थी किन्तु उसे मन्द नहीं कह सकते थे। तरणि-तनूजा के विशाल और पुण्य वक्षःस्थल पर लहरें उठती और गिरती थीं। उनमें एक विशेष गति और चाल थी, किन्तु कभी कभी वायु की तीव्रता के कारण वह मधुर लास्य (कोमल नृत्य) भी भीषण ताडंव में परिणत हो जाता था। रस्सी से वँधी हुई नावें भी इधर उधर चक्कर खाने लगती थीं। हमारे जल-भीरु भाई भय से काँप रहे थे। सोच रहे थे कि किस आफत में फँस गये, अव की वार प्राण वच गये तो फिर ऐसी भूल न करेंगे। वे नौका-यात्रा का आनन्द न ले सके। हमको तो नदी का कल कल छल छल शव्द वड़ा सुन्दर मालूम होता था। किनारे की मिट्टी टूट टूट कर गिरती थी। पतवारों की छप छप और उनसे उठे हुए जल के छींटे शरीर में शीतलता और मन में प्रसन्नता उत्पन्न कर रहे थे। इसी प्रकार नाव को खेते खेते हम लोग वृन्दावन धाम पहुँच गये। वहाँ पर गुसाईं-जी का मन्दिर तथा अन्य सुन्दर सुरम्य स्थान देखे। घूमते-फिरते सायंकाल हो गया। चन्द्रदेव अपनी सुधामयी रश्मियों द्वारा धरातल को ज्योत्स्ना में निमग्न कर रहे थे। हम लोग किनारे आ कर नाव पर वैठ गये। नाविकों ने प्रसन्नता से नाव खोल दी। जो कुछ कठिनाई थी वह तो आते समय थी। जाते समय नाव वहाव के साथ वहने लगी। पतवार का व्यवहार तो करना पड़ता था, किन्तु वहुत कम। नौका जल के वेग के साथ चल रही थी। किनारे के वृक्ष चलते हुए प्रतीत हो रहे थे। शरद् यामिनी की शुभ्र ज्योत्स्ना ने जल को रजतमय वना दिया था। सभी वातें अनुकूल थीं। भोजन भी साथ था। नाव पर सब ने भोजन किया। उसके पश्चात् गाने की ठहरी। रात्रि की निस्तव्धता में गान वहुत ही मधुर और प्रिय मालूम होते थे। हमारे भीरु भाई भी

समय की मादकता में अपनी भीरुता भूल गये। यमुना के जल में नृत्य करते चन्द्रमा के चंचल प्रतिबिंब को देख कर हम सब लोग आनन्द-विभोर हो उन दिनों की कल्पना करने लगे जब श्रीकृष्ण भगवान ने यमुना-कूल पर रास रचा होगा। नंददासजी की 'रास पंचाध्यायी' के कुछ गीत गाते गाते हम मथुरा पहुँच गये।

कुछ विवरणात्मक निबन्धों के खाके

अशोक

प्रतापी चंद्रगुप्त मौर्य का पौत्र और सम्राट् बिंदुसार का पुत्र। राज्याभिषेक से पहले ही तक्षशिला और उज्जैन का विद्रोह दमन करना। पिता की मृत्यु के अनन्तर लगभग २७२ ई० पू० में राज्यारोहण। युवावस्था में बड़ा निर्दय, ऐसी अनेक कथाएँ। कलिंग पर आक्रमण। भयंकर जन-संहार के बाद विजय। प्रायः सारे भारत का एकच्छत्र सम्राट्। अफगानिस्तान का प्रान्त भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित। कलिंग के भयंकर जन-नाश से मानसिक अशांति और पश्चात्ताप। जीवन में भयंकर परिवर्तन। बौद्धधर्म स्वीकार करना और युद्ध का सर्वथा त्याग। क्षात्रविजय के स्थान पर धर्म-विजय। धर्म-विजय की अनेक योजनाएँ। चीन जापान लंका आदि में बौद्धधर्म का प्रचार; अपने पुत्र और पुत्री को भी धर्म-प्रचारार्थ भेजा। प्रजा कल्याण के अनेक कार्य। अशोक के शिलालेख; अभी तक छोटे बड़े कुल ३१ मिले हैं; जो साम्राज्य से प्रत्येक कोने—शहबाजगढ़ी, कालसी, गिरनार, मैसूर—में हैं। मानसहरे का शिलालेख दो बड़ी चौड़ी शिलाओं पर। बौद्ध-साहित्य

में प्रियदर्शी। खैबर घाटी में अशोक की बनाई दीवार, काफिर कोट।

शासन सुदृढ़, पर दयापूर्ण। दिन प्रति दिन अत्यधिक दान। खूब शिक्षा-प्रचार।

महान् चरित्र। अशोक जैसे प्रतापी और त्यागी सम्राट् बहुत कम। सिकंदर आदि ने केवल प्रदेश जीते। अशोक ने हृदय।

राणा प्रताप

राणा उदयसिंह के पुत्र और प्रसिद्ध राणा सांगा के पौत्र। उदयसिंह के राज्यकाल में अकबर ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ को जीत लिया था। ये उजड़े मेवाड़ के राणा बने और प्रण किया कि जब तक चित्तौड़ को स्वतंत्र न करा लूँगा सोने चाँदी के बर्तनों में भोजन न करूँगा, पलँग पर न सोऊँगा। जन्म भर इस प्रण का पालन किया। कुम्भलगढ़ और गोगूँदा के पहाड़ी प्रदेश को केन्द्र बना कर मालवा और गुजरात जाने वाली सेना पर छापे मारने शुरू किये। इससे तंग आ कर अकबर ने इन्हें दबाने को मानसिंह को भेजा। हल्दीघाटी के मैदान में घोर लड़ाई, पर फैसला अनिश्चित। इनके घोड़े चेतक का का इन्हें ले भागना। लगातार जंगलों में निवास और मुगल सेना का पीछा करना। बरसों संघर्ष जारी रहना। कई बार खाने से भी मोहताज। तंग आ कर अकबर से संधि करने को उद्यत होना पर उसी समय भामाशाह द्वारा रुपये की मदद। उससे पुनः सेना एकत्र करना, संघर्ष जारी रखना और चित्तौड़ के सिवाय मेवाड़ के अधिकांश भाग को स्वतंत्र करवा लेना। सारा जीवन ही मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए लड़ते बिताना जिससे इतिहास में नाम अमर।

गुरु नानक

सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक। जन्म सन् १४६९ में तलवंडी नामक स्थान पर जिसे अब ननकाना साहब कहते हैं। पिता का नाम कालू, जो पटवारी का काम करते थे।

शुरू से ही भगवद्भक्ति की ओर झुकाव। पढ़ाई में अरुचि। पहले एक पंडित के पास पढ़ने को भेजा गया, बाद में एक मौलवी के पास। पर दोनों ही असफल, वे इनकी बातों से बड़े प्रभावित हुए और इन्हें अमानवीय पुरुष समझने लगे।

तब पिता ने व्यापार में लगाना चाहा पर उसमें भी इनका मन न लगा। पिता द्वारा व्यापार के लिए प्राप्त रुपया साधु संतों को भोजन कराने में खर्च कर दिया कि इससे अच्छा व्यापार और क्या होगा। अधिकांश समय ध्यान समाधि और साधु संगति में जाता था। १८ वर्ष की आयु में शादी। पर शादी के बाद भी अधिक समय साधु संगति और ईश्वर भजन में बीतता था। इससे पत्नी प्रायः दुखी रहती थी। २ पुत्र हुए श्रीचंद और लक्ष्मीचंद।

३० वर्ष की आयु में घर से निकल पड़े। देश विदेश में घूम कर और अपने विचारों का प्रचार करने लगे। शायद मक्का मदीना भी गये।

कबीर और रामानन्द के विचारों से प्रभावित। एक परमात्मा की भक्ति का उपदेश और जाति-बंधन एवं ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर करने पर जोर देते थे।

जन्मकाल में ही बहुत से शिष्य। जिनमें से लहना को अंगददेव के नाम से उत्तराधिकारी बनाया। सन् १५३९ में ७० वर्ष की आयु में स्वर्गवास। वाणी ग्रन्थ साहब में संगृहीत है।

गुरु गोविन्दसिंह

सिक्खों के दशम गुरु। नवें गुरु तेगवहादुर के पुत्र। औरंगजेब द्वारा गुरु तेगवहादुर का वध। उसके वाद गुरुओं की गद्दी पर वैठना। धार्मिक सिक्खों को सैनिक योद्धा वना दिया। पाँच प्यारों (शिष्यों) का बलिदान, खालसा सेना। प्रत्येक सिक्ख के नाम के साथ सिंह। प्रत्येक वीर सिक्ख के लिए पाँच ककार—केश, कंघा, कृपाण, कच्छा और कड़ा—रखना आवश्यक। औरंगजेब का गुरु के निवास-स्थान आनन्दपुर को घेर लेना। गुरु के दो पुत्रों—अजीतसिंह और जुझारसिंह की वीरता से लड़ते हुए मृत्यु। दो और छोटे पुत्रों का सरहिंद के पास जीते जी दीवार में चुना जाना, पर धर्म न त्यागना। इसपर गुरु गोविंद-सिंह का कथन—

इस भारत के सीस पै चारों दीने वार,
चार मुए तो क्या भया, जीवित कई हजार।

औरंगज़ेव का सिक्खों को तुच्छ समझना; इस पर गुरु का कथन—

सवा लाख से एक लड़ाऊँ तव गोविंदसिंह नाम धराऊँ।
चिड़िओं से मैं वाज मराऊँ तव गोविंदसिंह नाम धराऊँ॥

मुक्तसर में आनन्दपुर का वदला। औरंगज़ेव के वाद उसके वेटे वहादुरशाह का गुरु जी से संधि करना। उसका एक पठान को सिखा-पढ़ा कर गुरु की हत्या को भेजना। पठान का कई वर्ष गुरु जी के साथ रहना। अन्त में एक दिन विश्वासघात कर गुरु के पेट में कटार मारना। गुरु का वच जाना और कटार के घाव का धीरे-धीरे अच्छा होना। पर एक दिन भारी धनुष पर चिल्ला चढ़ाते हुए घाव का

फिर फट जाना। उससे देहावसान।

गुरु गोविंदसिंह बड़े विद्वान और साहसी। उनके दरबार में पंडितों का जमघट। स्वयं अच्छे कवि, उनका 'विचित्र नाटक' और 'चंडीचरित्र' वीर-रस की उत्कृष्ट रचनाएँ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जन्म संवत् १९१८ (सन् १८६१) में कलकत्ते में। पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ अच्छे संपन्न और शान्ति दया क्षमा परोपकार आदि गुणों के लिए प्रसिद्ध। बचपन में ही माता का देहान्त; अतः स्वामीभक्त नौकरों द्वारा पालन। इससे एकान्तप्रिय।

पाठशाला में शिक्षा बहुत कम। घर में ही अधिकतर शिक्षा। बचपन से ही कविता संगीत आदि की ओर अभिरुचि।

१७ वर्ष की अवस्था में विलायत यात्रा। तेईस वर्ष की अवस्था में विवाह। पैंतीस वर्ष की अवस्था में पत्नी का देहान्त। कुछ महीने बाद मँझली कन्या का देहान्त। इससे संसार से विरक्त सा हो जाना।

१८ वर्ष की अवस्था में कविता लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक पुस्तक सांध्यसंगीत; सोनारतरी, शिशु। प्रसिद्ध पुस्तक गीतांजलि; जिसका सन् १९१२ में अंगरेजी में अनुवाद हुआ। १९१२ में नोबेल पुरस्कार मिला। इससे विश्व भर में ख्याति। 'कविता' शक्ति के कारण संसार भर में घूम आये। भारत का सन्देश दूर दूर तक फैलाया।

कलकत्ता से कुछ दूर बोलपुर में विश्वभारती शान्तिनिकेतन की स्थापना। इसकी उन्नति में तन मन धन सब लगा दिया। यहाँ पर केवल भारत के ही नहीं अपितु बड़े बड़े विदेशी विद्वान भी अध्यापक हैं। विदेशों से भी विद्यार्थी आते हैं। नवीन पाठ्य-प्रणाली, जीवन

सादा। विद्यार्थी सर्वथा स्वतंत्र।

ब्रिटिश सरकार द्वारा "सर" की उपाधि; पर जलियाँवाला गोली-कांड पर उसका परित्याग। भारतीय संस्कृति की जीवित मूर्ति। विदेशों में उनके कारण भारत का नाम उज्ज्वल। संवत् १९९८ की श्रावणी पूर्णिमा के पुण्यमय दिवस को इहलीला समाप्त। भारत के इतिहास में वही स्थान जो प्राचीन महान् विचारकों दार्शनिकों और कवियों को प्राप्त।

सरदार वल्लभ भाई पटेल

गुजरात प्रान्त में सन् १८७५ ई० में पेटलाद ताल्लुके के करमसद गाँव में सरदार पटेल का जन्म—पिता का नाम श्री झवेरभाई पटेल—सरदार पटेल का असली नाम वल्लभ भाई। १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध में पिता झाँसी की रानी लक्ष्मीवाई की सेना में भरती हो गये, परन्तु इन्दौर-नरेश के कैदी हो गये। एक दिन सीखचों में वन्द थे कि महाराजा को शतरंज की गलत चाल चलते देख कर सावधान कर दिया। महाराज ने कैद से छोड़ दिया।

वल्लभभाई की प्रारंभिक शिक्षा पिता द्वारा घर पर, फिर पेटलाद की पाठशाला में—नडियाद के हाई स्कूल में विद्यार्थियों के प्रिय नेता—नडियाद के वाद वड़ौदा हाई स्कूल में और वहाँ अध्यापक से मनमुटाव होने पर फिर नडियाद हाई स्कूल में मैट्रिक—गोधरा में मुख्तारी शुरू—फौजदारी मुकदमे में प्रसिद्धि—इंगलैंड में वैरिस्टरी पढ़ने गये और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो कर वापसी और अहमदावाद में प्रैक्टिस—वम्वई के प्रसिद्ध वैरिस्टर—लक्ष्मी की कृपा हुई। कुछ साल वाद पत्नी की प्लेग से मृत्यु।

गांधी जी के सम्पर्क में—राजनैतिक जीवन प्रारंभ—बेगार प्रथा

का विरोध—खेड़ा के सत्याग्रह में कूदना—किसानों की दीन दशा देख कर विलास को छोड़ देना—सादगी का जीवन।

१९१९ में रौलट ऐक्ट—गांधीजी का असहयोग आन्दोलन प्रारंभ। सरदार पटेल सर्वात्मना उसमें कूद पड़े—फिर कांग्रेस के प्रधान नेताओं में गिनती। गांधी के प्रत्येक आन्दोलन में प्रमुख सेनापति—बैरिस्टरी की भारी आमदनी को लात मार दी—खद्दर के मोटे कपड़ों में किसान का सा जीवन—गुजरात विद्यापीठ की स्थापना—बोरसद के सत्याग्रह का नेतृत्व—नागपुर में झण्डा सत्याग्रह—गुजरात में भीषण बाढ़ और सरदार पटेल द्वारा सेवा—बारदोली में सत्याग्रह का अपूर्व संगठन—इसी सत्याग्रह में विजय के कारण 'सरदार' का पद—१९३० में सत्याग्रह आन्दोलन—गिरफ्तारी—रिहा होने पर बम्बई में फिर गिरफ्तारी।

१९३१ ई० में कराची कांग्रेस के प्रधान—१९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के सूत्रधार—१९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में गिरफ्तारी—युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता—सरदार पटेल गृहमंत्री बने—अपने जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य—५५० रियासतों को भारत संघ में सम्मिलित कर ब्रिटिश कूटनीति को विफल कर दिया—षड्यंत्रों से पूर्ण हैदराबाद को भी पुलिस कार्रवाई के द्वारा भारत में मिला लिया—भारत का मानचित्र ही बदल दिया—वस्तुतः भारत के राष्ट्र-निर्माताओं में उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

कश्मीर-यात्रा

अमृतसर की भीषण गर्मी से तंग आ कर कश्मीर के लिए प्रस्थान। पठानकोट तक रेल पर। वहाँ से लारी पर। रात बनिहाल में।

रास्ते में कभी एक दम चढ़ाई, कभी उतराई। पीर पंचाल की ऊँची चोटियों के बाद एक दम उतराई। रास्ते से एक ओर थोड़ा मुड़ कर वेरीनाग, जहाँ से जेहलम निकलती है। जहाँगीर उस स्वच्छ जल को वहिश्त का चश्मा कहता था। दो घंटे ठहर कर श्रीनगर। डाकखाने के पास हाउस-वोट में ठहरे। दो दिन आराम कर शिकारा ले कर इतवार को शालीमार और निशात बाग। वहाँ से टाँगा ले कर हरवन। वापिस आते हुए चश्माशाही। दूसरे दिन शंकराचार्य।

चार दिन बाद गुलमर्ग रवाना। टनमर्ग तक मोटर पर, वहाँ से पैदल। गुलमर्ग स्वास्थ्य-कर स्थान। गोल्फ के लंबे चौड़े मैदान। उससे दो ढाई हज़ार फुट ऊपर खिलनमर्ग। उससे आगे लगभग ३००० फुट की सीधी चढ़ाई चढ़कर पहाड़ के दूसरी ओर अलपत्थर या अमरवट। बिलकुल शान्त। पशु-पत्ती, पेड़-पत्ता कुछ नहीं। केवल एक बर्फ से ढका तालाव। गुलमर्ग से वापसी में फिरोज़पुर नाला।

उसके बाद डूँगा ले कर झीलों की सैर। पहले खीर भवानी, कश्मीरियों की सबसे वड़ी देवी। वड़ा मेला लगता है। वहाँ डूँगा रोक कर गान्धरबल। फिर घोड़ों पर दूर तक लद्दाख रोड पर। दूसरे दिन खीरभवानी से डूँगा ले कर मानसवल। तीन ओर पहाड़ से घिरी स्वच्छ जल वाली झील। वहाँ से मोटर द्वारा बुलर झील। डूँगे द्वारा फिर श्रीनगर वापिस। कुछ दिन श्रीनगर ठहर कर फिर पहलगाँव की ओर। रास्ते में अनंतनाग में गंधक का चश्मा, फिर मार्त्तंड का मन्दिर, शाम को पहलगाँव। चारों ओर पहाड़ों से घिरी ७००० फुट ऊँची तिकोनी घाटी। अनेक यात्री तंबू लगा कर ठहरे हुए। वहाँ से श्रावणी से पाँच दिन पहले अमरनाथ की यात्रा पर पहला पड़ाव चंदनवाड़ी, यहाँ बरफ का पुल। जीवन को खतरे में डालने वाली तीन दिन की

यात्रा के वाद अमरनाथ। वर्फ का शिवलिंग।

वापिस आ कर फिर श्रीनगर। श्रीनगर की प्रदर्शिनी, जो प्रतिवर्ष राज्य की ओर से होती है। उसमें कश्मीर के कला-कौशल का प्रदर्शन।

कश्मीर के सुन्दर स्वर्गीय प्राकृतिक दृश्यों के साथ वहाँ के लोगों के नारकीय जीवन की तुलना।

रेलवे-दुर्घटना

११ जनवरी को देहरादून एक्सप्रेस से वहन को ले कर कलकत्ता से रवाना हुआ। रात गाड़ी में आराम से सोये थे। समय लगभग ३ बजे रात। चिचाकी और हज़ारीवाग रोड के वीच अचानक झटका महसूस हुआ और भयंकर हाहाकार सुनाई दिया। उस समय मालूम हुआ कि गाड़ी उलट गई है। ऐंजिन के साथ कुछ अगले डिब्वे आगे निकल गये हैं, पिछले पटरी से उतर गये हैं।

उसी समय हज़ारीवाग गया और धनवाद से सहायता पहुँची। मृतकों और ज़ख्मियों को निकालना आरम्भ किया गया। किसी के हाथ पैर टूट गये, किसी के सिर पर चोट। चारों ओर चीखें सुनाई देती थीं। कई ज़मीन पर मरे पड़े थे, कई डिब्वों के नीचे।

पुलिस का पहरा, रेलवे अफसर प्रान्तीय सरकार तथा सेवासमिति के कार्यकर्ता मौके पर। कम चोट वालों को पास के हस्पताल में, अधिक चोट वालों को कलकत्ता पहुँचाया गया। मृतकों की फोटो ले कर दाह-संस्कार। रेलवे अधिकारियों के कथनानुसार २५ मरे, वाकी घायल। लोगों के हिसाब से १०० के लगभग मरे। मेरी वहन के सिर में चोट आई। सवेरे दस वजे की गाड़ी से कलकत्ता वापिस।

विवेचनात्मक निबन्ध

संतोष

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥ —कबीर

जितना मिले उतने में ही प्रसन्न रहना संतोष कहलाता है। यह एक बड़ा गुण है। मनुष्य यदि संतोषी है तो निर्धन होते हुए भी कुबेर से भी अधिक धनी है, और यदि वह संतोषी नहीं है तो धनवान होते हुए भी निर्धन है। संतोषी मनुष्य न तो दीन हो कर किसी के पास माँगने जाता है, और न वह किसी से लड़ाई झगड़ा करता है। उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वह गृह-कलह, चोरी, ठगी, जुआ, मिथ्या-भाषण आदि पापों से बचा रहता है। निर्द्वन्द्व हो कर विचरता है। ईर्ष्यावश न वह किसी से द्वेष करता है और न उससे कोई वैर करता है। उसको किसी का भय भी नहीं होता और न वह किसी की खुशामद करता है।

संतोषी पुरुष अपने संतोष के बल से सम्राटों को भी नीचा दिखा सकता है। विजयमद से भरे हुए सिकन्दर बादशाह ने डायो-जिनीज़ नाम के एक फकीर से कहा—तू मुझसे कुछ माँग। उसने कहा—मुझे कुछ नहीं चाहिए। जब सिकन्दर ने उससे दुबारा माँगने को कहा तब डायोजिनीज़ ने बड़ी गंभीरता से कहा कि कृपा करके आप सामने से हट जाइए जिससे मेरे ऊपर धूप अच्छी तरह से आवे। अभिमानी सिकन्दर का मद चूर हो गया। सिकन्दर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि संसार का राज्य प्राप्त करके भी उसे संतोष नहीं हुआ है और

वह फकीर अपने टब (डायोजिनीज़ टब में बैठा रहता था) में ही मस्त है। सिकन्दर ने कहा कि यदि मैं सिकन्दर न होता तो निश्चय ही मैं डायोजिनीज़ होना पसन्द करता।

वस्तुतः जिस मनुष्य में संतोष नहीं है, चिन्ता उसे सदा घेरे रहती है। चिन्ता के कारण न वह इस लोक में प्रसन्न रह सकता है और न उस लोक में ही सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है।

संतोष की महिमा अवश्य है, किन्तु इस परम गुण को प्राप्त करना सहज नहीं है। मनुष्य वासनाओं के जाल में फँसा हुआ है जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त नहीं होती अपितु बढ़त है उसी प्रकार वासनाओं का नाश उनकी तृप्ति से नहीं होता प्रत्युत उससे वासनाओं का तारतम्य बढ़ता ही रहता है। मनुष्य को नौ खा कर तेरह की भूख रहती है। यदि एक चाह मिटती है तो दूसरी उपस्थित हो जाती है। यदि धन की चाह नहीं है तो पुत्र-कामना बनी रहती है। यदि धन और पुत्र की कामना नहीं है तो यश की लिप्सा रहती है। मनुष्य की तृष्णा बुढ़ापे तक भी नहीं मिटती। कहा भी है 'तृष्णैव तरुणायते' अर्थात् तृष्णा अमरबेल की भाँति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहती है। किन्तु जिसमें तृष्णा रहती है वह सूखता जाता है। तृष्णा ही सब दुःखों का मूल है। जहाँ तृष्णा की तृप्ति नहीं हुई, वहीं परम दुःख है। तृष्णा की पूर्ति के लिए मनुष्य धर्म-अधर्म या पाप-पुण्य का भी ख्याल नहीं करता। तृष्णा महारोग है। संतोष और तृष्णा का वैर है। जहाँ तृष्णा नहीं, वहीं संतोष रह सकता है।

तृष्णा को दूर करने का सबसे बड़ा उपाय यही है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को कम करे। आवश्यकताएँ बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घटती हैं। किसी नई चीज़ को खरीदने से पहले से

लेना चाहिए कि इसके बिना हमारा काम चल सकता है, या नहीं? और जिन लोगों के पास यह चीज़ नहीं है वे अपना काम किस प्रकार चलाते हैं। जिस मनुष्य की आवश्यकताएँ जितनी अधिक हैं उसको दौड़-धूप और चिन्ता भी उतनी ही अधिक करनी पड़ती है और जितना ही मनुष्य दौड़-धूप या चिन्ता में लगा रहता है उतना ही उसे प्रसन्नता और संतोप भी कम मिलते हैं। यदि हम सन्तोपी वनना चाहते हैं तो हमको अपनी आवश्यकताओं में कमी करनी चाहिए क्योंकि सारा संसार भी सव लोगों की सव आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता।

असन्तोप भी उन्नति में कुछ सहायता देता है, किंतु असन्तोप अच्छी वातों का होना चाहिए। विद्या और धर्म के संवंध में जो असंतोप होता है, वह सराहनीय है। धन के सम्वन्ध में असन्तोप वहीं तक क्षम्य है जहाँ तक कि वह मनुष्य को चिंता का शिकार नहीं वना देता और उसे अधर्म की ओर नहीं ले जाता। अधर्म का कमाया हुआ सारे संसार का राज्य भी मनुष्य को शांति नहीं दे सकता। मुहम्मद गोरी के संवंध में कहा जाता है कि जव उसने देखा कि उसका खज़ाना उसके साथ नहीं जायगा तव वह रो पड़ा था। अधर्म द्वारा कमाये हुए धन से चित्त को सदा ग्लानि रहती है। सन्तोप का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य लँगोटा लगाये वैठा रहे। मनुष्य उद्योग करे और सुख से रहे; पर वह अपने चित्त को न खो वैठे। वह रुपये—लालसा—के पीछे पागल न हो जाय। कवीर ने संतोप का आदर्श दूसरा ही वताया है—

"साईं इतना दीजिए, जामें कुटुँव समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।"

अत्यधिक साम्राज्य-लालसा और असन्तोप सदा ही संसार में कलह और अशांति के मूल वनते रहे। इसी असन्तोप के कारण

राजा और प्रजा एवं पूँजीपतियों और मज़दूरों में खींचातानी मची रहती है। इसी के कारण आज तक विध्वंसकारी संसार-व्यापी महासमर होते रहे हैं। अपने पास चुपड़ी होते हुए भी लोग दूसरे के पास चुपड़ी नहीं देखना चाहते। यदि लोग अपने ईर्ष्या-भाव को कम कर सकें और यथा-लाभ सन्तुष्ट रह कर स्वयं जीवित रहें और दूसरों को भी जीवित रहने दें तो यह पृथ्वीतल ही स्वर्ग बन सकता है।

धैर्य

आपत्ति के समय मन को स्थिर रखना धैर्य कहलाता है। मन स्वभाव से ही चंचल होता है और विपत्ति के समय तो और भी चंचल हो जाता है—नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगता है, एक मत पर स्थिर नहीं रहता। धैर्यवान मनुष्य मन को स्थिर रख कर काम करता है, वह विपत्ति में अपनी सावधानी और विचार-शक्ति को खो नहीं बैठता। उसका मन सदा एक-रस रहता है। न वह खुशी के समय प्रसन्नता से फूल जाता है और न विपत्ति आने पर व्याकुल हो 'किंकर्तव्य-विमूढ' बन जाता है। धैर्यवान सदा शान्त-चित्त हो कर काम करता है।

प्रवेश

मनु महाराज ने धर्म के लक्षण बतलाते हुए धैर्य को पहला स्थान दिया है। 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम्' इत्यादि में धृतिः (धैर्य) ही पहले आता है। धैर्यवान पुरुष ही जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है, क्योंकि उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। वह शान्तचित्त हो सब बातों का लाभालाभ विचारता है और फिर अपने विचार के अनुकूल दृढ़ता-पूर्वक कार्य करता है। उसका लक्ष्य सहज में नहीं बदलता और वह अविरल परिश्रम द्वारा लक्ष्य की सिद्धि

धैर्य की महत्ता

कर लेता है। मनुष्य को अपने कार्य में तो धैर्य रखना ही चाहिये, किन्तु जब कभी उस पर नेतृत्व का भार आ पड़े तब तो धैर्य परमावश्यक हो जाता है। जहाँ नेता धैर्य छोड़ देता है, वहाँ उसके अनुयायियों के भी पैर उखड़ जाते हैं और जीती हुई बाजी भी हाथ से निकल जाती है।

अच्छे कार्यों में सदा विघ्न उपस्थित होते हैं। प्रारम्भिक विघ्नों के कारण जो अपने ध्येय को छोड़ बैठते हैं सफलता उनसे बहुत दूर चली जाती है। जो आपत्तियों पर आपत्तियाँ आने पर भी अपने कार्य में संलग्न रहते हैं वे सफलता का श्रेय पाते हैं। धैर्य केवल युद्ध-क्षेत्र में ही आवश्यक नहीं है, वरन जीवन के प्रत्येक स्थल में इसकी आवश्यकता रहती है। उड़ाकू लोगों को शुरू में कितनी असफलताओं का सामना करना पड़ा था, पर अब उन्होंने आकाश तो क्या अन्तरिक्ष पर भी विजय प्राप्त कर ली है। स्वर्ग-माथा पर चढ़ाई करने वाले बार-बार की असफलताओं से भी विचलित नहीं हुए, इसी कारण विजय-श्री उनके हाथ लगी। जो लोग असफलताओं के कारण धैर्य नहीं खोते, वे विजयी हो कर अपना अनुकरणीय आदर्श छोड़ जाते हैं।

संसार के इतिहास में धैर्यवान पुरुषों के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। वास्तव में धैर्यवान ही संसार का इतिहास बनाते हैं। भगवान राम के सामने कितनी आपत्तियाँ आईं, किन्तु उन्होंने धैर्यपूर्वक सब कठिनाइयों को सहा और सब पर विजय पाई। पांडवों ने नाना प्रकार की आपत्तियाँ सहीं; अज्ञात-वास में रहे, सेवाधर्म भी स्वीकार किया, सब प्रकार की कठिनाइयाँ उठाईं पर धैर्य नहीं छोड़ा; अतः अन्त में जीत उन्हीं की हुई। सत्यपरायण हरिश्चन्द्र ने संकट के समय में धैर्य नहीं खोया। अपने प्रिय पुत्र के शव के दाह के समय भी वे श्मशान का कर माँगे बिना नहीं रहे। उन्होंने अपने धैर्य

उदाहरण

और वचन की दृढ़ता के आगे अभिमानी इन्द्र को भी नीचा दिखा दिया था।

महाराज शिवाजी अपने धैर्य के ही बल से औरंगज़ेब के फंदे से निकल कर पुनः अपने राज्य में पहुँच सके थे। साधारण कोटि के मनुष्यों में भी धैर्य के उदाहरणों की कमी नहीं है। गोखले आदि देश के जगमगाते रत्नों ने बहुत ही गरीबी की अवस्था में धैर्य-पूर्वक अपना अध्ययन जारी रख कर इतना ऊँचा पद पाया था।

महात्मा गाँधी धैर्य की ज्वलन्त मूर्ति थे। राष्ट्र के स्वातन्त्र्य संग्राम में जहाँ उत्तेजना स्वाभाविक होती है, वहाँ उन्होंने अपूर्व धैर्य धारण कर राष्ट्र को संकटों से बचाया। वे बड़ी से बड़ी उत्तेजना में भी विचलित नहीं हुए और बड़े से बड़ा कष्ट उन्होंने अद्भुत धैर्य के साथ झेला। न जाने कितनी बार उन्हें जेल जाना पड़ा, परन्तु धैर्यपूर्वक अपने न्याय-मार्ग पर चलते रहे, कभी घबरा कर उन्होंने वह मार्ग नहीं छोड़ा। जब समस्त देश सांप्रदायिक उन्माद में पागल नेनभरे वे अपने धैर्य और अपनी बुद्धि को कायम किये रहे। नैंड, फ्रांस, रूस,

उपसंहार

धैर्य प्रत्येक स्थिति के मनुष्य के लिए आवश्यक है। लगातार कई सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। धैर्यवान पुरुष के आगे सब वि स्वावलंबी सिर झुका देती हैं। देश में धैर्यवान लोगों का का मुँह सौभाग्य की बात है। उन्हीं से देश के सुधार की एक ही मात्र आशा है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को जो अपना और देश का भला चाहता है, धैर्य प्राप्त करना चाहिये। कठिन से कठिन विपत्तियों में भी महापुरुषों के आदर्श को अपने सामने रख कर घबराना न चाहिए।

एकता

एकता से तात्पर्य है मेल। एकता मनुष्यों, जातियों और राष्ट्रों को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में सहायक होती है।

जब हम इस जगत् पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें पता चलता है कि सृष्टि के प्रत्येक अणु में एकता विराज रही है। यदि एक क्षण के लिए भी दुनिया में से एकता को उठा लिया जाय तो चारों ओर नाश ही नाश दृष्टिगोचर होने लगे। प्रकृति का निर्माण असंख्य वस्तुओं के मेल से हुआ है। हमारे शरीर की रचना भी अनेक अंगों और नस-नाड़ियों के मेल से हुई है। बड़े-बड़े विशाल भवनों को देखने से पता लगता है कि वे छोटी-छोटी ईंटों के मेल से बने हुए हैं। स्वयं मनुष्य यदि अपनी दिनचर्या और अपने जीवन पर दृष्टि डाले तो उसे मालूम हो जायगा कि वह इस अमल्लगी। जो बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। दिनरात हो कर अन्तना की आवश्यकता रहती है। मनुष्य का घर-बार, संस्र भी इसी एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं—यदि ये बिखरी हैं। वास्मं हों, यदि पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता-पुत्र तथा अन्य ्धयों में पारस्परिक एकता न हो, अपितु फूट और कलह हो, तो ुनुष्य को पल भर भी सुख नहीं मिल सकता। तात्पर्य यह कि संसार में कोई भी कार्य एकता के बिना न हो सका है और न हो ही सकता है।

एकता की सर्वव्यापकता

जिन देशों में लोगों ने एकता के महत्त्व को भली प्रकार समझ लिया है, आज वे देश उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए हैं। उनका साम्राज्य, व्यापार, शिक्षा, देश की आर्थिक दशा—सब कुछ उन्नत अवस्था में हैं। इस उन्नति का कारण एकता का बल

हुएकता का बल

है। देखा जाता है कि छोटे-छोटे देश भी आज बड़े-बड़े साम्राज्यों का मुकाबला करने पर तुले हुए हैं। उनके पास एकता की ही शक्ति है। चींटी कितना छोटा जीव है, लेकिन जब ये मिल जाती हैं तो बड़े बड़े कीड़ों को भी उठा ले जाती हैं। तृणों के मेल से रस्सी बनती है और उनसे मद-मस्त हाथी भी बाँध लिये जाते हैं। वर्षा की छोटी छोटी बूँदें मिल कर ही नदियों के प्रबल प्रवाह का रूप धारण कर लेती हैं। सारांश यह है कि यह सारा संसार एकता से ही बना हुआ है। बहुत सी इमारतों के एक जगह बन जाने पर बड़े-बड़े नगर बन जाते हैं। एक एक मनुष्य के मिलने से लाखों और करोड़ों की सेना बन जाती है। का

इस प्रकार के उदाहरणों से सहज ही पता लग जाता है कि एकता अत्यन्त आवश्यक और अमूल्य वस्तु है। यदि देश-भर का प्रत्येक मनुष्य इसकी आवश्यकता अनुभव करने लग जा है, यदि ...रा देश एकता के सूत्र में बँध जाय तो बहुत उपकार हो ...ति उन्नत तभी इंगरेज़ जाति एकता ही के कारण संसार में इतना बड़ा दूसरों पर निर्भ... जापान को लीजिए—कितना छोटा सा देश है; अकेला इंगलैंड, फ्रांस, रूस, उससे भय लगता था। उसमें एकता क...लित सेना का भी लगातार कई कोई देश, जाति अथवा समाज जीवित सका था कि वह स्वावलंबी

प्राचीन इतिहास भी य... लिए उसे किसी दूसरे देश का मुँह देश में घोर अशान्ति फैल... व्यक्ति और जाति अपने भाग्य के आप ही के शिखर से ऐसा गिरा दूसरों की सहायता की जितनी ही अपेक्षा करते विभीषण में एकता का अभा अयोग्य बनाते हैं, उतना हम पराधीनता जाती रही। ईश्वर भी उसी समय हमारी मदद करता

पुरानी बातों को छोड़ भी करने को तैयार होते हैं। इसीलिए की और सामाजिक तथा राजनीतिक प्रयत्न करना चाहिए।

आज हमारा भारत देश स्वतंत्र है। यदि प्रत्येक नागरिक स्वावलंबन और परिश्रम का पाठ पढ़ ले, तो निश्चय ही हमारा देश उद्योग-व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सभी दृष्टियों से उन्नत हो सकता है।

आदर्श जीवन

मनुष्य जीवन बड़ा दुर्लभ है। कई योनियों में निरन्तर घूमने के बाद जीव को मनुष्य-जीवन प्राप्त होता है। अतः इसको व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। जहाँ तक हो सके इसे सफल बनाने का यत्न करना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि हमारा जीवन किस प्रकार सफल बन सकता है। इसके लिए हमको मानव-जीवन का उद्देश्य जानने की आवश्यकता है। अपनी शक्तियों का पूर्ण विकास कर समाज में साम्यभाव से रहते हुए समाज को हर प्रकार से उन्नत बनाने में योग देना जीवन का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पहले हमको अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर ध्यान देना चाहिए। उपर्युक्त आदर्श की पूर्ति तथा तीनों प्रकार की उन्नति के लिए भारतवर्ष में मनुष्य-जीवन के चार विभाग कर दिये गये थे। ये आश्रमों के नाम से प्रख्यात हैं। ये चार आश्रम इस प्रकार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारों आश्रमों के यथाविधि पालन करने से मनुष्य आदर्श जीवन व्यतीत कर सकता है।

जीवन का लक्ष्य

यह मनुष्य-जीवन का पहला आश्रम है। इसमें मनुष्य अपने भावी जीवन की तैयारी करता है। ब्रह्मचर्य का पालन कर वह अपने शरीर में शक्ति का संचय करता है और शिक्षा द्वारा शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के

ब्रह्मचर्य

साधनों को प्राप्त करता है। इस आश्रम में मनुष्य आज्ञापालन, दूसरों के प्रति सद्व्यवहार, सहनशीलता, सेवा तथा आदरभाव आदि सद्-गुणों का अभ्यास कर लेता है। ब्रह्मचर्य-आश्रम में डाले हुए अभ्यास जीवन भर काम देते हैं। जब तक मनुष्य इस आश्रम से पूरा लाभ नहीं उठाता, तब तक वह आगे चल कर आदर्श जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।

गृहस्थ आश्रम

दूसरा आश्रम गृहस्थ है। यह सब आश्रमों में श्रेष्ठ है, क्योंकि इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब की सिद्धि होती हैं और अन्य सब आश्रमों का पालन भी होता है। मनु महाराज ने कहा है कि जिस प्रकार वायु का आश्रय ले कर सब जीवधारी जीते हैं उसी प्रकार अन्य आश्रम गृहस्थ-आश्रम के आश्रय में रहते हैं।

आदर्श जीवन के लिए पति और पत्नी के सहयोग की परम आवश्यकता है। पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष की आवश्यकता केवल शारीरिक वासनाओं की तृप्ति के लिए नहीं होती वरन मानसिक और आध्यात्मिक सहयोग के लिए भी होती है।

आदर्श जीवन में सबसे पहली बात यह है कि हम स्वस्थ और नीरोग रह कर अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य पूर्णतया पालन कर सकें। स्वस्थ रहने के लिए हमको समया-नुकूल आहार-व्यवहार की आवश्यकता है। हमको अपने समय का ऐसा विभाजन करना चाहिये कि जिसमें धनोपार्जन, सामाजिक तथा पारिवारिक कर्त्तव्य-पालन, आमोद-प्रमोद, स्वास्थ्यरक्षा और धार्मिक कर्त्तव्यों के लिए स्थान रहे, और फिर उसके अनुकूल चलना चाहिये। यद्यपि निद्रा स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है, तथापि हमको उसे

प्रातः-पर्यटन का लाभ उठाने में बाधक न बनाना चाहिये। हमको अपनी आजीविका ऐसी रखनी चाहिये, जो धर्म के विरुद्ध न हो और जिससे देश और समाज को हानि न पहुँचे। धनोपार्जन हमें इसलिए नहीं करना है कि हम उसको अपना ध्येय बना लें, वरन इसलिए कि हम उसके द्वारा अपना कर्त्तव्य पालन कर सकें। कर्त्तव्य-पालन से अपूर्व प्रसन्नता होती है। जो अपने कर्त्तव्य को आलस्यवश टालते हैं, वे कभी प्रसन्न नहीं रह सकते। धनोपार्जन में हमको कभी बेईमानी की भावना नहीं लानी चाहिये। बेईमानी से कमाया हुआ धन स्थायी नहीं होता, और यदि स्थायी हो भी तो उससे इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कि ईमानदारी द्वारा कमाये हुए धन से। आदर्श जीवन में व्यसनों के लिए भी स्थान है, किन्तु वे व्यसन ऐसे न होने चाहिएँ जिनसे शारीरिक, नैतिक या आर्थिक हानि हो। संगीत, चित्रकारी आदि कला-सम्बन्धी व्यसन मनुष्य-जीवन में अपूर्व सौंदर्य उत्पन्न कर देते हैं। उनके कारण जीवन का भार हलका हो जाता है। यदि इन व्यसनों में मनुष्य को अपने घर के लोगों का सहयोग मिल जाय तो जीवन और भी सुखमय बन जाता है।

हमको अपने जीवन में दूसरों की सेवा के लिए भी समय निकालना चाहिये। इससे हमारे हृदय में मानव जाति के प्रति सहानुभूति बढ़ जाती है और हममें कोमल भावों की जागृति होती है। सेवा द्वारा सहनशीलता बढ़ती है और जिनकी हम सेवा करते हैं उनके प्रति हमारा प्रेम दृढ़ हो जाता है।

गृहस्थाश्रम में हमको केवल अपनी ही चिन्ता नहीं रहती वरन सारे परिवार का ध्यान रखना पड़ता है। हमारा कोई कार्य या वचन ऐसा न होना चाहिये जिससे हमारा अभिमान प्रकट हो अथवा दूसरों

के चित्त को आघात पहुँचे। दूसरों के मन को आघातना ज्ञान परि-
एक प्रकार की हिंसा है। पारिवारिक जीवन में हमको इर्थियों को
ध्यान रखना चाहिये कि हम दूसरों के सुख और दुःख के लिए
दायी हैं। यदि हमारे परिवार के लोग प्रसन्न नहीं हैं तो हम भी प्ररिक
नहीं रह सकते। जहाँ तक हो, हमको ऐसा अवसर न आने देना चाहिये
जिससे किसी प्रकार का गृहकलह उत्पन्न हो।

वानप्रस्थ और संन्यास

अंतिम दो आश्रम धर्म और मोक्ष के साधन हैं। वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य गृहस्थी का त्याग नहीं करता वरन वित्तोपार्जन से विरत हो अपने को समाज-सेवा और आध्यात्मिक उन्नति के कार्यों में लगा देता है। संन्यास में मनुष्य गृहस्थी का भी त्याग कर एकदम मोक्ष-प्राप्ति में लग जाता है। आजकल लोग संन्यास का अर्थ बिलकुल संन्यास वा त्याग नहीं मानते। संन्यास का अर्थ यही बतलाया जाता है कि हमको अपने व्यक्तिगत लाभ, सुख और दुःख के विचारों का त्याग कर परोपकार के कार्य में लग जाना चाहिये। समाज-सेवा भी एक प्रकार की ईश्वर-सेवा है, क्योंकि ईश्वर और उसकी सृष्टि में भेद नहीं है।

संक्षेप में यह जीवन आदर्श है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब का एक-सा साधन हो सके और जिसके द्वारा व्यक्ति और समाज में सामंजस्य स्थापित हो सके।

विद्यार्थी-जीवन

विद्यार्थी-जीवन तैयारी का जीवन है। यह तैयारी दो प्रकार की होती है—एक ज्ञानोपार्जन की और दूसरी सदभ्यास द्वारा क्रिया-कौशल प्राप्त करने की। ज्ञानोपार्जन कई प्रकार से होता है—प्रकृति-निरीक्षण

प्रातः-पर्यटन का द्वारा, मौखिक उपदेश द्वारा।

प्रकृति-निरीक्षण

ईश्वर ने हमको ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं। वे हमारे ज्ञान की सच्ची माध्यम हैं। बहुत से विद्यार्थी ज्ञान के स्वाभाविक साधनों को छोड़ कर पुस्तकों का आश्रय लेते हैं। उन लोगों को जानना चाहिए कि पुस्तकें भी निरीक्षण के आधार पर बनी हैं। यद्यपि मनुष्य प्रकृति-निरीक्षण द्वारा हर समय शिक्षा प्राप्त कर सकता है तथापि इस निरीक्षण का अभ्यास जैसा बाल्यकाल में पड़ जाता है वैसा ही सारे जीवन भर बना रहता है। संसार में जितने आविष्कार हुए हैं उनका आधार किसी न किसी प्रकार के निरीक्षण में हैं। वाष्प-शक्ति का आविष्कार भी एक बालक के निरीक्षण के आधार पर हुआ था। साधारण से साधारण घटनाओं में किसी बड़े सिद्धान्त के मिलने की संभावना रहती है। इसलिए हमको चाहिए कि किसी घटना को साधारण समझ कर उसकी उपेक्षा न करें।

पुस्तक-अध्ययन और मौखिक उपदेश

विद्यार्थी-जीवन में ये दोनों बातें प्रायः साथ-साथ चलती हैं। बहुत से विद्यार्थी अपनी पुस्तकों को ज्ञान प्राप्त करने का साधन नहीं समझते वरन परीक्षा पास करने का साधन मानते हैं। पुस्तकों से वास्तविक लाभ तभी होता है जब कि उनको ज्ञान-प्राप्ति का साधन समझा जावे। जो कुछ हम पढ़ें उसपर हमको मनन करना चाहिए। मनन करके हमें अपने ज्ञान को अपने मानसिक संस्थापन का अंग बना लेना चाहिए। हमको केवल एक ही पाठ्य-पुस्तक पर निर्भर नहीं रहना चाहिए वरन उस विषय की अधिक से अधिक पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ। यदि हमको छात्रावास में रहने का अवसर मिला है तो हमको अन्य छात्रों के साथ विचार-परिवर्तन कर

अपने ज्ञान को बढ़ाना चाहिए। विचार-परिवर्तन से जितना ज्ञान परिपक्व होता या बढ़ता है उतना अन्य बातों से नहीं। विद्यार्थियों को अपने गुरुओं के संपर्क में आने का उद्योग करना चाहिये।

ज्ञानोपार्जन के अतिरिक्त विद्यार्थी जीवन में अपनी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों को बढ़ाना आवश्यक है। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त विद्यार्थियों को स्कूल या कालेज के सभी खेलों में भाग लेना चाहिये। इनसे शरीर में स्फूर्ति बढ़ जाती है और सामाजिकता भी आ जाती है। विद्यार्थी-जीवन प्रसन्नता का जीवन है। इस जीवन में चिन्ता को पास न फटकने देना चाहिए। आत्म-संयम रखते हुए यह जीवन पूर्ण स्वतन्त्रता का है। स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि अध्यापकों का आदर न किया जाय या उनकी आज्ञा की अवहेलना की जावे, वरन यह कि लड़के स्वच्छ वातावरण में हरे-भरे पौदे की भाँति प्रसन्न रह कर फूलें-फलें और वे किसी प्रकार के बन्धनों में न बँध जावें। पढ़ाई से अतिरिक्त समय में वे उछलें, कूदें और हर प्रकार से अपने शरीर में बल का संचय करें। इन सब बातों के साथ-साथ वे चरित्रवान बनने का उद्योग करें। वे सत्य पर दृढ़ रहना सीखें और छल, कपट, दंभ आदि दुर्गुणों को पास न फटकने दें। चरित्र-गठन के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि संकल्प शक्ति बढ़ाने का अभ्यास किया जावे जिससे भावी जीवन में वे विषयों में फँसने से बच सकें।

शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति

जिस प्रकार शारीरिक उन्नति आवश्यक है उसी प्रकार व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करना भी आवश्यक है। विद्यार्थी-जीवन में अपने से बड़ों छोटों और बराबर वालों से मिलने का अवसर मिलता है। इस जीवन में जो विद्यार्थी-गण सद्व्यवहार का अभ्यास नहीं डालते उनको

आजीवन कठिनाई होती है। यही जीवन अभ्यास बनाने का है। बोल-चाल, रहन-सहन आदि जैसा विद्यार्थी-जीवन में बन जाता है, वैसा उमर भर बना रहता है। शील और सदाचार का अभ्यास भी इसी समय डालना चाहिए। यही तैयारी का अवसर है। चूक जाने पर पछताना व्यर्थ है—

"फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥"

चरित्र-संगठन

मनुष्य की विशेषता उसके चरित्र में है। यदि एक मनुष्य दूसरे से अधिक आदरणीय समझा जाता है तो वह अपने चरित्र के कारण। म   का आदर उसके पद धन या विद्या के कारण भी होता है, किन्तु यह सब च   एक प्रकार से बाह्य हैं। पद स्थायी नहीं होता। यदि वह स्थायी भी हो तो उसके लिए जो आदर होता है, वह भयजन्य होने के कारण श्लाघनीय नहीं। धन का आदर वही करेगा, जिसको धनी से कुछ लाभ उठाने की इच्छा होगी। विद्या का मान अवश्य ऐसा है जो वास्तव में अपने कारण कहा जा सकता है; किन्तु वह भी विनय और चरित्र के बिना चिरस्थायी नहीं होता। विद्या, धन, बल तथा पद के होते हुए भी चरित्र के अभाव में रावण पूजा न जा सका। इसलिए मनुष्य की वास्तविक महत्ता उसके चरित्र में है। चरित्र द्वारा ही मनुष्य की आत्मा का मूल्य आँका जा सकता है। चरित्र में ही आत्मबल का प्रकाश दिखाई पड़ता है। मनुष्य का चरित्र ही बतलाता है कि वह कितने पानी में है।

यह चरित्र क्या है जो इतना महत्त्व रखता है? यह चरित्र उन गुणों का समूह है जो हमारे व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। विनय, उदारता, धैर्य, निर्भय हो कर सत्य बोलना, लालच में न फँसना

एवं अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना, यह सब गुण चरित्र में आते हैं। यद्यपि चरित्र के अन्तर्गत और भी बहुत से गुण हैं तथापि उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों के सम्बन्ध में दो चार शब्द कह देना अनुपयुक्त न होगा।

विनय विद्या का भूषण है। विनय के विना विद्या शोभा नहीं देती। श्रीमद्भगवद्गीता में ब्राह्मण का 'विद्याविनयसम्पन्न' विशेषण दे कर श्रीकृष्ण भगवान ने विद्या का विनय के साथ आवश्यक संबंध बतलाया है। विनय केवल विद्या की शोभा नहीं वरन धन और बल की भी है। विनय से आत्मा की शुद्धि होती है। विनय के साथ निरभिमान, मनुष्य जाति के प्रति आदरभाव, सहन-शीलता आदि अनेक सद्भाव लगे हुए हैं। इसके अभ्यास से और सब मुख्य मुख्य गुणों का अभ्यास हो जाता है।

उदारता का अर्थ खुले हाथों धन दे डालना ही नहीं, अपितु दूसरों के प्रति क्षमा का भाव रखना, दूसरे के विचारों का आदर करना, स्वयं श्रेय न ले कर दूसरों को श्रेय देना, अपने को जिससे हानि पहुँची हो उसके साथ भी अच्छा व्यवहार करना आदि गुण उदारता के अन्तर्गत हैं। जो लोग उपकृत पुरुष के साथ भी आदर का व्यवहार करते हैं, जो लोग अपने साथियों की भूलों तथा अपराधों की स्वयं व्याख्या कर उनको क्षमा कर देते हैं और जो दूसरों की छोटी बात को भी महत्ता देने को तैयार हैं वे वास्तव में उदार हैं। ऐसी उदारता मानव-जाति का गौरव है।

कठिनाइयों में चित्त को स्थिर रखना धैर्य कहलाता है। मनुष्य के जीवन में समय-समय पर कठिनाइयाँ आती हैं। जो लोग इन कठिनाइयों से विचलित न हो कर अपने कर्तव्य-मार्ग पर डटे रहते हैं

वे ही सच्चे धीर वीर पुरुष कहलाते हैं। कठिन से कठिन स्थिति में भी प्रसन्न रहना आत्मा की उच्चता का सूचक है। राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त करुणा-जनक परिस्थिति में भी कर्तव्य-मार्ग से नहीं हटे। राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिलने पर भी रामचन्द्रजी का मुख म्लान नहीं हुआ; इसी से वे जगद्वन्दनीय हुए।

सत्य की वड़ी महिमा है। मनुष्य को अपने वास्तविक विश्वासों को प्रकट करने का साहस होना चाहिए। भय अथवा खुशामद के लिए झूठ बोलना निन्द्य है, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सत्य की विडम्बना की जावे।

चरित्रवान पुरुषों के लिए निर्लोभिता गुण अत्यन्त आवश्यक है। लोग लालच में पड़ कर अपनी उमर भर की सारी तपस्या खो वैठते हैं। जो लोग स्वयं लालच में नहीं पड़ते उन्हीं की वात का असर होता है। इसी तरह संसार में दूसरों को उपदेश देने में कुशल मनुष्यों की कमी नहीं है, पर कर्त्तव्य-परायण लोगों की कमी है। इसी कारण संसार की सुन्दर से सुन्दर योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं। जो लोग आपत्ति आने पर भी विचलित नहीं होते, प्रलोभनों के जाल में नहीं फँसते, और अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अपने हानि-लाभ का ख्याल नहीं करते वे ही सच्चे कर्त्तव्य-परायण समझे जाते हैं; उन्हीं का समाज में आदर होता है।

ये सव गुण अभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं। वाल्यावस्था चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त समय है। इस समय जो सदभ्यास वन जाते हैं वे सारी उम्र काम देते हैं। यदि हमको अपना जीवन सार्थक करना है तो हमको सदभ्यास द्वारा चरित्रवान वनना चाहिये। हमारे चरित्रवान वनने पर भारत का भविष्य निर्भर है। चरित्रवान पुरुष ही देश का

सुधार कर सकते हैं। चरित्रवान पुरुष देश का गौरव है और चरित्रहीन पुरुष देश का कलंक।

मधुर भाषण

कोयल काको देत है, कागा कासों लेत।
तुलसी मीठे वचन सों, जग अपनो करि लेत॥

संसार में मृदुभाषी या मीठा बोलने वाले लोगों को हर कोई सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है। ऐसे लोग सहज ही सर्व-साधारण की सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ-कहीं वे बात करेंगे, चार आदमी उनकी बातें ध्यानपूर्वक सुनेंगे; उनके विचारों का मूल्य होगा। मृदुभाषी की बातों से दूसरों के मन तो शान्त होते ही हैं; उसकी अपनी अन्तरात्मा भी विचित्र शान्ति का अनुभव करती है। उसी शान्ति में आनन्द, सुख और यश अन्तर्हित रहते हैं। इन्हीं विचारों को कबीर जी अपने एक दोहे में इस प्रकार कहते हैं—

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपहुँ सीतल होय॥

मृदुभाषी मनुष्य सबका प्यारा होता है। उससे द्वेष तो कोई करता ही नहीं, क्योंकि वह स्वयं किसी से द्वेष नहीं करता। जब द्वेष नहीं होता, तो सभी कार्यों में ऐसे मनुष्यों को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। पग पग पर आने वाली रुकावटें अपने आप हल हो जाती हैं। लोग आप से आप ऐसे मनुष्यों की सहायता करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।

मृदुभाषी मनुष्य के हृदय से 'अहंभाव' अर्थात् झूठे अभिमान का भी लोप हो जाता है। संसार में 'अहंभाव' ही एक ऐसा दुर्गुण है, जो मनुष्य की सफलता में भारी बाधक है और इस दुर्गुण का बीज

मृदुभाषा के हृदय में उग ही नहीं सकता, यह वात स्वयंसिद्ध है।

परन्तु जो मृदुभाषी नहीं होते, जिनकी वाणी हमेशा कतरनी का सा काम करती है, वे अभागे असफलता से छुटकारा नहीं पा सकते। ऐसों का जीवन दुखों से भरा रहता है; क्लेश और कलह ही में उनकी ज़िन्दगी का अधिकांश नष्ट हो जाता है। जन-साधारण की सहानुभूति तो ऐसों को मिलनी असंभव होती ही है, उनके निकट-सम्बन्धी और वन्धु तक भी उनसे दूर रहने का भरसक प्रयत्न करते हैं। क्योंकि किसी भी समय वे उनसे भी उलझ सकते हैं।

उक्त दोहा, जिसके आधार पर यह निवन्ध लिखा जा रहा है, इस वात की स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि मीठे वचनों से दूसरों को अपने वश में किया जा सकता है या दूसरों का स्नेह-भाजन वना जा सकता है। मीठे वचन सफलता की कुंजी हैं और जीवन-यात्रा निर्विघ्न समाप्त करने के लिए सरल मार्ग हैं।

संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके सद्गुणों की आधार-शिला में यही गुण है। भगवान् कृष्ण के जीवन पर दृष्टिपात करने से मालूम होता है कि उन्होंने किसी भी समय इस गुण को हाथ से नहीं जाने दिया। कौरवों के कठोर वचनों को भी उन्होंने मृदु मुसकान से ग्रहण किया और अन्त में वे सफलता और श्रेय के भागी वने। महात्मा गाँधी को देखिये, वे मृदु भाषा द्वारा विरोधियों को भी अपने पक्ष में कर लेते थे। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदा मीठा वोल वोले। वड़ों का कहना है कि तलवार का घाव भर सकता है, लेकिन वात का घाव नहीं भरता और यह वात का घाव, मीठे वचनों के अभाव में ही होता है, जिसका अन्तिम परिणाम द्वेष और कलह है। इससे वच कर रहना ही सुख शांति और समृद्धि का कारण है। मृदुभाषी सवके स्नेहभाजन होते हैं।

देश-प्रेम

देश-प्रेम की भावना बड़ी पवित्र भावना है। इसी से प्रेरित हो कर वीर योद्धा अपने देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि देते हैं। इसी देश-प्रेम की भावना से प्रेरित हो कर राणा प्रताप सब सुख ऐश्वर्य त्याग कर जन्म भर जंगलों की खाक छानते रहे; शिवाजी जन्म भर मुगलों से लड़ते रहे। बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं, गत एक शताब्दी में भारत के कितने ही नौजवान देश-प्रेम में दीवाने हो कर फाँसी के तख्ते पर लटक चुके हैं; कितने ही बरसों जेल की काल-कोठरियों और काले-पानी की यातनायें भुगत चुके हैं। रूस जापान के युद्ध में जिस प्रकार जापानी वीरों ने खुशी खुशी खाइयों में कूद कर देश की बलिवेदी पर अपने प्राण समर्पित किये थे उसे आज भी लोग याद करते हैं। और गत महायुद्ध में रूसी और चीनी वीरों ने जिस प्रकार अपने देश के लिए तन मन न्यौछावर कर चप्पे चप्पे के लिए लड़ कर अपने देश को बचाया वह इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। देश-प्रेम की इसी भावना को कवियों ने "जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" और "खाके वतन का मुझ को हर ज़र्रा देवता है" आदि शब्दों में व्यक्त किया है।

देश-प्रेम की भावना मनुष्य में स्वाभाविक रूप से होती है, चाहे उसका भान न हो। वंश-परम्परा से हम जिस देश के निवासी हैं, जिस भूमि में लोट कर हम बड़े हुए हैं, जिसकी जलवायु का प्रभाव हमारे शरीर के रोम रोम में व्याप्त है उसके प्रति ममत्व की भावना होना स्वाभाविक ही है।

पशु-पक्षी भी जहाँ रहते हैं उस स्थान से प्रेम करने लगते हैं।

अपने घरों में रहने वाली चिड़ियों को वहाँ से निकालना आसान काम नहीं। आप उन्हें पकड़ कर कितनी ही दूर छोड़ आइये वे फिर वहीं लौट आयेंगी। फिर मनुष्य तो संज्ञाशील प्राणी है। वह अपने देश से प्रेम से क्यों न करे।

पर हमारे देश में राष्ट्रीय भावना का प्रायः अभाव रहा है। कारण यह कि भारतवर्ष बड़ा विस्तृत देश है। अंग्रेजी शासन से पहले यह प्रायः छोटे छोटे खंडों में बँटा रहा है। यातायात के साधनों के अभाव के कारण सारे देश को एक सूत्र में बाँधना था भी बड़ा कठिन कार्य। इसी लिए विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आसानी से सफल होते रहे हैं। देश-प्रेम की भावना उस समय भी थी अवश्य, पर देश की कल्पना बड़ी संकुचित होती थी। लोग अपने अपने प्रदेश के लिए ही लड़ते भिड़ते थे। अश्वमेध कर सारे देश को एक सूत्र में बाँधने की भावना अत्यन्त प्राचीन है। मध्य युग में यह भावना कुछ दब गई। मुगलों ने फिर देश को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और अन्त में सारे देश को एक सूत्र में बाँधने का श्रेय अंग्रेजों को मिला। स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीय भावों का सच्चे अर्थ में विकास भी प्रायः इसी युग में हुआ। पर आजकल यहाँ प्रान्तीयता की भावनायें फिर सिर उठाने लगी हैं। इस ओर से हमें सतर्क रहना चाहिये।

देश-प्रेम की अभिव्यक्ति जहाँ बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा अथवा विदेशी शासन से देश को मुक्त करवाने के प्रयत्नों द्वारा होती है वहाँ अपने देशवासियों की सेवा अथवा अपने देश को गौरवान्वित करने वाले किसी भी कार्य से हो सकती है। आजकल जब कि साम्राज्यवाद का जमाना अपने अन्तिम दिन गिन रहा है और यू० एन० ओ० की स्थापना तथा पंचशील के सिद्धान्तों के प्रचार के

कारण वाह्य आक्रमणों की सम्भावना बहुत कम [illegible] ने मरीज़ों कार्यों से देश-प्रेम का परिचय दे सकते हैं जिन से संसार [illegible] पधिक की प्रतिष्ठा वढ़े, हमारा देश संसार के महान देशों [illegible] आ सके।

देशाटन

मनुष्य सामाजिक जीव है। वह मकान में वंद हो कर नहीं रह सकता। उसके लिए तनहाई की कैद सबसे कड़ी सज़ा समझी जाती है। साधारण मनुष्य यह जानना चाहता है कि और देशों के लोग किस प्रकार रहते-सहते हैं और उनके रीति-रिवाज़, शिक्षा-पद्धतियाँ और शासन-विधियाँ किस प्रकार की हैं। वह अपने ज्ञान को व्यापक बनाना चाहता है। मनुष्य में देश-विदेश में जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए उसने नाना प्रकार के यान और वाहन बनाये हैं। देशाटन का अर्थ केवल विदेश-यात्रा ही नहीं है, अपितु अपने देश के भिन्न भिन्न स्थानों में जाना भी देशाटन कहलाता है। अब तो भारतवर्ष में विदेश जाने का चाव भी बहुत बढ़ गया है; क्योंकि अब समुद्र-यात्रा के विरुद्ध सामाजिक बंधन पहले जैसे नहीं रहे। अब मनुष्य के लिए कोई देश अगम्य नहीं है। उसके सम्बन्धों का बहुत विस्तार हो गया है। उन सम्बन्धों के कारण देशाटन बड़ी आसान बात हो गई है। देशाटन से मनुष्य को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शिक्षा और स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

देशाटन शिक्षा का एक मुख्य अंग माना गया है। देशाटन के बिना शिक्षा को अपूर्ण समझना चाहिये। किसी पदार्थ के विषय में बीसियों पुस्तकें पढ़ लेने से भी उतना लाभ नहीं होता, जितना उसे एक

अपने घरों में [illegible] सकती है। ताज़महल का वर्णन चाहे बीसियों बार क्यों नहीं। [illegible] पर उसकी बनावट का ठीक ठीक ज्ञान उसे देखने से ही [illegible] सकता है। भूगोल का वास्तविक ज्ञान तो देशाटन द्वारा ही प्राप्त [illegible] है। देशाटन द्वारा हम दूसरे देशों की राजनीतिक और आर्थिक अवस्थाओं से ठीक ठीक परिचित हो सकते हैं। यदि हम दूसरे देश या प्रान्त में जा कर किसी कालेज या शिक्षालय में शिक्षा न भी प्राप्त करें तो भी हमको विदेश में जाने से ही बहुत सी बातों की शिक्षा मिल जाती है। देशाटन का शिक्षा-सम्बन्धी बहुत महत्त्व है।

देशाटन से दूसरे देशों के बाज़ारों का पता चलता है। हम अपने सुभीते का माल वहाँ से खरीद सकते हैं और अपना माल वहाँ बेच सकते हैं। देशाटन के आदी होने के कारण पश्चिम-देशवासी आज संसार भर के व्यापार के कर्ता-धर्ता बने हुए हैं। देशाटन की बदौलत ही यूरोप-निवासियों को अमेरिका और भारतवर्ष का पता चला था। देशाटन द्वारा हम दूसरे देशों के कला-कौशल से परिचय प्राप्त कर सकते हैं और उस ज्ञान के द्वारा अपने यहाँ के कला-कौशल में उन्नति कर सकते हैं।

देशाटन से स्वास्थ्य पर भी बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब हम अपने स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाते हैं तब हमारी चिन्ताएँ कुछ कम हो जाती हैं और हमारा कार्य कुछ हलका हो जाता है; उसका हमारे स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। एक स्थान पर रहते रहते हमारा जी ऊब जाता है, दूसरी जगह जाने से हमको आनन्ददायक विभिन्नता दिखाई पड़ती है और उससे हमारे चित्त को प्रसन्नता मिलती है। दूसरे देशों और प्रान्तों में जा कर जलवायु-परिवर्तन का भी हमारे स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रायः डाक्टर लोग समुद्र तट की

जलवायु सेवन करने का परामर्श देते हैं। कभी कभी वे अपने मरीजों को पहाड़ पर भेज देते हैं। जो लोग देशाटन कर सकते हैं वे सदा अधिक गर्मी और शीत के कुप्रभाव से अपने को बचाये रख सकते हैं।

देशाटन से मनुष्य भिन्न भिन्न स्थानों की प्राकृतिक शोभा का भली प्रकार निरीक्षण कर सकता है। भारत में कश्मीर आदि ऐसे सुरम्य प्रदेश हैं जो पृथ्वी के स्वर्ग कहे जा सकते हैं। नदियों के जल-प्रपात, हिमाच्छादित पर्वतश्रृंग और सघन वनस्थलियाँ किसका मन नहीं हर लेतीं! देशाटन से प्राकृतिक तथा कृत्रिम दोनों ही प्रकार की शोभा देखने को मिलती है। बड़ी बड़ी गगनचुम्बिनी अट्टालिकाएँ, स्फटिक की सी स्वच्छ सड़कें, कटे-छँटे बाग-बगीचे, बड़ी बड़ी दुकानों का वैभवपूर्ण चमकता-दमकता सामान और आँखों में चकाचौंध पैदा करने वाला विद्युत प्रकाश किस के चित्त को आकर्षित नहीं करता! इसी लिए कहा है—

सैर कर दुनियाँ की गाफिल ज़िंदगानी फिर कहाँ?

समाचार-पत्रों के लाभ

विज्ञान ने मनुष्य के सम्बन्ध का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया है। कभी वह अपने तक, अपने परिवार के सुख दुःख तक, अपने गाँव या नगर की घटनाओं तक ही सीमित रहता था। प्रान्त, देश तथा समूचा विश्व उसके चिन्तन का विषय न थे। वह उन से प्रायः उदासीन रहता था। उनकी घटनाओं को जानने का उसके पास साधन भी तो न था। तभी उसमें उनके प्रति कोई रुचि वा आकर्षण न था। विज्ञान ने समूचे विश्व को अपने नूतन आविष्कारों से जोड़ दिया है। समाचार-पत्रों, तार तथा रेडियो द्वारा संसार भर की घटनाओं, परिवर्तनों तथा दूसरी सभी बातों का लोगों को तुरंत परिचय मिल जाता है। जनता की रुचि आज

विश्व-परिचय की ओर लगी है। प्रातः बिस्तर से उठते ही समाचार-पत्र एक अच्छे मित्र की तरह सभी के घर पहुँच कर उन्हें अपने प्रान्त, देश वा भिन्न भिन्न देशों की सूचनाएँ सुना देता है।

अपने देश में राजनीति किस करवट बैठ रही है, कौन सा दल अब देश में लोकप्रिय हो रहा है, कहाँ कौन नेता आ रहा है, कहाँ किस नेता ने किस विषय पर अपनी सम्मति या भाषण दिया, देश में किसी समस्या को सुलझाने की क्या क्या योजनायें विचाराधीन हैं, कहाँ चुनाव में कौन जीता और कौन हारा है, ऋतु कैसी रही है, कैसी रहने की आशा है, उपज पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा, बीते दिन राज्य में कौन सी प्रिय-अप्रिय घटनाएँ घटी हैं, विशेष घटनाओं में अपराधी के रूप में पकड़े गये व्यक्तियों के अपराधों का क्या निर्णय हुआ है, किसी कर वा नये नियम के लागू होने पर जनता की क्या भावना है, किसी नेता के व्यवहार या भाषण पर लोग क्या टिप्पणी करते हैं, कहाँ किस खेल-प्रतियोगिता में कौन जीता और कौन हारा, इत्यादि विषय समाचार-पत्र में रहते हैं। यही पाठक के ज्ञान को बढ़ा कर उसे युग का परिचय देते हैं।

फिर किसी देश का उसके पड़ोसी देशों से कैसा सम्बन्ध है, देश की सीमाओं में कहीं कोई गड़बड़ी तो नहीं है, कहीं कोई प्रबल देश किसी पड़ोसी को निर्बल पा कर उस पर आक्रमण तो नहीं कर रहा, देशों के राजनैतिक सम्बन्ध, उनका आदान-प्रदान, उनका व्यवहार कैसा रूप धारण कर रहा है, ये सभी बातें भी समाचार-पत्र बता देते हैं। समय समय पर जनता और देशों को भावी घटनाओं से सचेत करते रहते हैं। वर्तमान चीन-भारत-विवाद का चित्र समाचार-पत्रों में स्पष्ट उभरा दिखाई दे जाता है।

व्यापारिक सूचनाएँ व्यापारी तथा किसान दोनों को सचेत किये रहती हैं कि देश वा विदेश में अब किन वस्तुओं की अधिकता वा किन की न्यूनता हो रही है, किन के भाव चढ़ जाने की सम्भावना है, तथा किन का भाव गिर जायगा। प्रतिदिन के उतार चढ़ाव का व्योरा समाचार-पत्र स्पष्ट प्रकट करके व्यापारियों तथा उत्पादकों का पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं।

जनमत बनाने में समाचार-पत्रों का बड़ा महत्त्व है। इनकी सूचनाएँ, चित्र, आलोचनाएँ साधारण व्यक्ति का प्रायः वैसा ही दृष्टिकोण बना देती हैं। कुछ ही वर्ष पहिले भारत में 'हिन्दी चीनी भाई भाई' की भावना इन्हीं समाचार-पत्रों का परिणाम थी, आज भारत और चीन में घृणा और शत्रुता की भावना भी इन्हीं के प्रचार का फल है। समाचार-पत्र जनता की भावनाओं की जहाँ सूचना देते हैं, वहाँ वे उसका नया दृष्टिकोण बनाने में उसकी सहायता भी करते हैं। नेताओं व विभिन्न दलों को चढ़ाने गिराने में समाचार-पत्रों का बड़ा हाथ होता है।

समाचार-पत्रों का शिक्षण-सम्बन्धी भी बड़ा महत्त्व है। इनकी भाषा सरल, सरस तथा प्रयोग-प्रधान होती है। छात्र तथा भाषा-प्रेमी इन के लेखों, विशेष रूप से सम्पादकीय लेखों से नये शब्दों, मुहावरों तथा भावों को प्रकट करने की शैली की शिक्षा लिया करते हैं। साधारण पढ़े लिखे भी समाचार-पत्रों के नियमित पठन-पाठन से भाषा की अच्छी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इसके साथ ही समाचार-पत्रों में साहित्य की उत्तम नई-पुरानी पुस्तकों का परिचय वा उनकी संक्षिप्त सी आलोचना भी प्रकाशित होती रहती है। यह भी पाठकों का पथ-प्रदर्शन करती तथा उन्हें उत्तम साहित्य की प्राप्ति में सहायता देती है। कई बार परीक्षोपयोगी लेख, आलोचनाएँ वा प्रश्न भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो कर छात्रों

को शिक्षा की सुविधा प्रदान करते रहते हैं। अर्थशास्त्र तथा राजनीति के छात्रों को तो इन्हीं समाचार-पत्रों से ही अपनी शिक्षा का सार प्राप्त होता है।

समाचार-पत्र शासक वर्ग पर अंकुश का कार्य भी करते हैं। वे उनकी त्रुटियों तथा कुव्यवस्थाओं को प्रकट कर उन्हें ठीक रास्ते पर चलने को बाधित करते हैं।

व्यापारिक वस्तुओं के प्रचारार्थ विज्ञापन भी इनमें छपते हैं। लोग अपनी भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें भी इनमें छपवाते हैं। रोचक कहानियों से मनोरंजन करने का भी ये उत्तम साधन हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रों से अनेक लाभ हैं। सच पूछो तो आज के युग में समाचार-पत्र जीवन का एक आवश्यक अंग हैं। इनके बिना आज जीवन नीरस लगता है। प्रातः इन्हें पाने के लिए मन बड़ा उत्सुक रहता है। अतः सारे संसार में प्रतिदिन इनकी संख्या और प्रकाशन बढ़ता ही जा रहा है।

अनेक लाभों के साथ इनसे कुछ हानियाँ भी हैं—झूठी वा बढ़ा-चढ़ा कर लिखी सूचनाओं से उत्तेजना फैलाना, किसी की झूठी प्रशंसा से जनता को धोखा देना, झूठे विज्ञापनों से जनता को ठगने में ठगों की सहायता करना, किसी वर्ग की व्यर्थ आलोचना किये जाना आदि। समाचार-पत्र यदि अपना कर्तव्य समझें तो देश के निर्माण में इनका महत्त्वपूर्ण योग हो सकता है।

त्योहारों का महत्त्व

मनुष्य सामाजिक जीव है। समाज में रह कर आनन्द मनाना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मनुष्य वित्तोपार्जन अथवा पठन-

पाठन में सदा नहीं लगा रह सकता। नित्य के कामों से छुट्टी पा कर वह कभी-कभी अपने घर-बार के लोगों के साथ आनन्द मनाना चाहता है। त्योहार इसी मानव-प्रवृत्ति के फल हैं। यद्यपि सब त्योहारों में थोड़ा बहुत धार्मिक भाव लगा रहता है, तथापि उनके प्रारंभ होने के भिन्न भिन्न कारण होते हैं। कोई त्योहार तो जातीय इतिहास की किसी मुख्य घटना से सम्बन्ध रखते हैं; जैसे १५ अगस्त का स्वाधीनता दिवस या २६ जनवरी का प्रजातंत्र दिवस। कई त्योहार ऋतु-परिवर्तन और कृषि आदि से सम्बन्ध रखते हैं; जैसे होली, वैशाखी, वसन्त पंचमी आदि। कई त्योहार अवतारों और महापुरुषों के जन्म-दिवस आदि के उपलक्ष्य में मनाये जाते हैं, जैसे रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, बुद्धजयन्ती, महावीर-जयन्ती, गुरु नानक जयन्ती, गांधी-जयन्ती आदि। कई त्योहारों का केवल धार्मिक महत्त्व है, यद्यपि उनमें भी ऋतु का थोड़ा बहुत सम्बन्ध लगा होता है, जैसे श्रावणी, विजया दशमी, दीपावली। ये त्योहार प्रायः सभी जातियों में होते हैं। ईसाइयों के त्योहारों में बड़ा दिन और गुड फ्राइडे और मुसलमानों के त्योहारों में ईद तथा मुहर्रम मुख्य हैं।

त्योहार जातीय जीवन के प्रधान अंग होते हैं। इनके द्वारा त्योहार मनाने वालों में एक विशेष प्रकार का ऐक्यभाव स्थापित हो जाता है। लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि वे सब एक जाति और एक धर्म वाले हैं। इस प्रकार सब एक प्रेम-सूत्र में बँध जाते हैं। यदि लोग विदेश में जा कर भी इन त्योहारों को मनाते हैं तो वहाँ इनके द्वारा उनका अपने अन्य देश-वासियों के साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। देश में भी इनका बड़ा सामाजिक महत्त्व है। रिश्तेदार एक दूसरे के घर आते-जाते हैं, एक दूसरे को उपहार वा भेंट भेजते हैं। बाल-बच्चों को आमोद-प्रमोद का मौका मिल जाता है। इन

त्योहारों के द्वारा जातीय संस्कृति भी कायम रहती है और उनसे जातीय भाव भी पुष्ट होते रहते हैं। इनके द्वारा जाति की मानसिक प्रवृत्तियों का भी पता चलता है; जैसे नाग-पञ्चमी से अहिंसावृत्ति और गोवर्धन-पूजा से पशु-पालन के महत्त्व का।

ऋतु-परिवर्तन-सम्बन्धी त्योहार शुभ कार्यों के आरम्भ करने में प्रोत्साहन देते हैं। उनके द्वारा समय के विभाग का भी ज्ञान बना रहता है। समय का ध्यान न रखना बड़ी मूर्खता और अज्ञानता है। लोग कहने लगते हैं कि इसको तो वसन्त की भी खबर नहीं है। इन त्योहारों का महत्त्व तत्कालीन प्राकृतिक सौंदर्य के निरीक्षण से है। वसन्त पर आम के बौर तथा अन्न के बाल की पूजा होती है। लोग लहलहाती हुई पीली सरसों के खेतों को देखने जाते हैं। शरत्-पूर्णिमा के दिन पूर्णचन्द्र की शुभ्र ज्योत्स्ना का आनन्द लेते हैं। इन त्योहारों पर लोग ऋतु के फल खा कर अपने जीवन को भी ऋतु के अनुकूल बनाते हैं। महापुरुषों के जीवन-सम्बन्धी त्योहार हमारे मन में उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न कर उनके चरण-चिह्नों पर चलने के लिए हमें प्रोत्साहित करते हैं। इन त्योहारों पर उन महात्माओं के गुण गा कर हमें उन गुणों को अपने जीवन में स्थान देने के लिए प्रेरणा मिलती है।

इन जातीय त्योहारों को मनाना हमारा परम कर्त्तव्य है। इनके द्वारा हम जातीय जीवन जागृत रख सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि हम इन त्योहारों का महत्त्व भूलते जाते हैं। आज-कल ज्ञान और विज्ञान का युग है। हम जो कुछ करें, अन्धविश्वास और परम्परा के अनुकरण में न करें। परम्परा का अनुकरण भी बुरा नहीं है, क्योंकि उसमें संगठन की भावना रहती है; किन्तु यदि हम उनका महत्त्व भी समझ लें तो बड़ी ही उत्तम बात है। बहुत से त्योहारों में संशोधन और

परिवर्तन की भी आवश्यकता है, जैसे दीवाली के शुभ अवसर पर लोग जुआ खेलते हैं। जुआ खेलना लक्ष्मी-पूजा नहीं है। जुए की हार से जो मानसिक ग्लानि होती है, वह त्योहार की प्रसन्नता को दबा देती है। इसी प्रकार होली में कीचड़ फेंकना और गाली देना सभ्यता के विरुद्ध है। यह त्योहार सब लोगों में समता का भाव स्थापित करने के लिए मनाया जाता था। समता दूसरों को अपने बराबर उठाने में है न कि उनके बराबर नीचे गिरने में।

त्योहारों को प्रेम और ऐक्य भाव बढ़ाने का साधन बनाना चाहिए और इनके द्वारा विचारों के आदान-प्रदान तथा काव्य-कला आदि की वृद्धि का आयोजन करना चाहिए। पूर्वकाल में वसन्तोत्सव पर नाटक आदि खेले जाते थे, उनके द्वारा आमोद-प्रमोद ही नहीं होता था, वरन साहित्य की वृद्धि भी होती थी। इन त्योहारों के अवसरों पर जातीय खेल-कूदों के प्रचार की भी व्यवस्था करनी चाहिये। बहुत से स्थानों पर नाग-पञ्चमी पर कुश्तियाँ होती हैं। जिन प्रथाओं के द्वारा जनता में जीवन-स्फूर्ति पैदा हो उन्हें जारी रखने और उनका प्रचार करने की अत्यन्त आवश्यकता है। श्रावण में झूला आदि द्वारा स्त्रियों का अच्छा व्यायाम हो जाता था। ऐसी प्रथाओं को पुनर्जीवन देने की आवश्यकता है। त्योहारों के अवसर पर कवि-सम्मेलन और प्रदर्शनी आदि की आयोजना करना परम वांछनीय है। ऐसा करने से केवल हमारे आनन्दोल्लास की भावना की ही तृप्ति न होगी वरन हम में शिक्षा का प्रचार भी बढ़ेगा और कला-कौशल की उन्नति के साथ देश की भी उन्नति होगी।
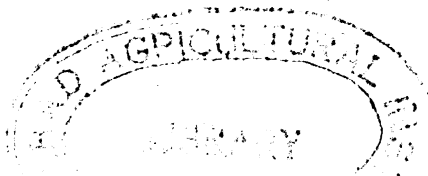
हिन्दू समाज और उसकी त्रुटियाँ

भूमिका

भारतवर्ष में अधिकांश जनसंख्या हिन्दू लोगों की है। जिस प्रकार देश के विचार से हिन्दू जाति सब से अधिक फैली हुई है, उसी प्रकार काल की दृष्टि से सब से अधिक प्राचीन भी है। इस कारण इस जाति के लोगों में नाना प्रकार की विचार-धाराएँ और नाना प्रकार की प्रथाएँ वर्तमान हैं। इन विचार-धाराओं और प्रथाओं में कुछ ऐसी हैं जो बहुत प्राचीन होती हुई भी बहुत उपयोगी हैं और कुछ ऐसी हैं जो परिस्थितियों के बदल जाने से अब अनुपयोगी हो गई हैं। बहुत सी प्रथाएँ ऐसी भी हैं, जिनका असली रूप बदल गया है और इस बदले हुए रूप में उनका सारा तत्त्व जाता रहा है। ऐसे प्राचीन समाज में कुरीतियों और त्रुटियों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इन त्रुटियों का बहुत अंश में निराकरण भी होता जा रहा है, किन्तु जहाँ पर शिक्षा का प्रकाश पूरे तौर से नहीं पहुँचा है और विचार की अपेक्षा परम्परा और रूढ़ि का अधिक आदर है वहाँ पर वे अब भी अपने भीषण रूप में वर्तमान हैं। इन त्रुटियों में से कुछ एक का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

जाति पाँति

हिन्दू समाज में जाति-पाँति का विचार वर्ण-व्यवस्था के आधार पर चला है। वर्ण-व्यवस्था का मूल तत्त्व प्रेम और सहकारितापूर्ण कार्य-विभाग में है। वर्ण-विभाग से वंश-क्रमानुगत कौशल का लाभ उठा कर लोग अपने-अपने कार्य में अधिक निपुणता प्राप्त कर सकते थे। लुहार का लड़का जितनी जल्दी लोहे का काम सीख सकता है, उतनी जल्दी दूसरा लड़का, जब तक विशेष प्रतिभावान न हो, नहीं सीख सकता। इसके अतिरिक्त

इस वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू-धर्म की बड़ी रक्षा की है। इसके कारण लोग अन्य धर्म स्वीकार करने से बचे रहे हैं। प्राचीन समय में वर्ण-व्यवस्था ने जातीय संगठन में बहुत कुछ योग दिया है। किन्तु धीरे धीरे लोग इस वर्ण-व्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य भूल गये और उसकी ऊपरी रूढ़ियों को पकड़े रहे। अतः जो वर्ण-व्यवस्था पहले कार्य-विभाग पर आश्रित थी, वह अब केवल जन्म पर आश्रित रह गई। जब ब्राह्मण का बेटा ही ब्राह्मण कहलाने लगा तो उन्होंने अपना मुख्य कार्य पढ़ना-पढ़ाना तो छोड़ दिया, केवल हन्दे माँगना, ऊटपटाँग कुछ बोल कर विवाह आदि संस्कार कराना और दक्षिणा लेना ही उनका काम रह गया। धीरे-धीरे जातियों कौर उपजातियों का ऐसा कठिन जाल बन गया है कि उसमें से हिन्दू जाति का निकलना कठिन हो गया है। जो वर्णाश्रम-धर्म संगठन का मूल था, वही अब विच्छेद का कारण बन गया है। धर्म के नाम पर लोग दूसरों पर अत्याचार करते हैं। लोग वर्ण को महत्त्व देते हैं, चरित्र और व्यक्ति को नहीं। ऊँचे वर्ण का दुराचारी भी आदर पाता है और नीच वर्ण का सदाचारी भी अपने वर्ण के कारण अपमानित होता है। उच्च वर्ण में उत्पन्न मनुष्य निकम्मा और खाली होने पर भी कोई ऐसा काम करने को तैयार नहीं होता, जो नीच वर्ण के लोग करते हैं। हर्ष की बात है कि शिक्षा के प्रचार के साथ ये जाति-पाँति के बंधन अब कुछ ढीले होते जा रहे हैं। पर विवाह आदि के अवसर पर अब भी जाति-पाँति का बहुत ख्याल रक्खा जाता है। जाति के बाहर विवाह करने को लोग किसी तरह भी तैयार नहीं होते। फल इसका यह होता है कि बहुत बार इच्छा के विरुद्ध अयोग्य वर को भी कन्यायें देनी पड़ती हैं।

विवाह बड़ा महत्त्वपूर्ण संस्कार है। विवाह के आधार पर ही पारिवारिक जीवन, जो सामाजिक जीवन का मूल अंग है, खड़ा है;

किन्तु हिन्दू-समाज में इसी मुख्य प्रथा में वहुत सी त्रुटियाँ हैं। वाल-विवाह और वृद्ध-विवाह आज कल भी चल रहे हैं। यह समाज के लिए कलंक स्वरूप हैं। एक ओर विधवाओं की संख्या वढ़ाने के लिए वाल-विवाह और वृद्ध-विवाह ही कुप्रथाएँ चल रही हैं, दूसरी ओर विधवाओं पर ज़रूरत से ज्यादा नियंत्रण होने लगा है। पुरुषों पर कोई अंकुश नहीं और स्त्रियों के लिए सब प्रकार के बन्धन हैं।

विवाह-संबंधी त्रुटियाँ

इनके सिवा दहेज की प्रथा ऐसी है जो कन्या के माता-पिता को सदा चिन्ता में डाले रखती है। कन्याओं के विवाहों पर जितना धन व्यय किया जाता है उतना उनकी शिक्षा पर नहीं किया जाता। कहीं कहीं तो विवाह वरवादी का साधन वन जाता है। लोग कर्जा ले कर अपनी संपत्ति से हाथ धो वैठते हैं। यह प्रसन्नता की वात है कि स्त्रियों पर अत्याचार रोकने के लिए कई कानून वन रहे हैं।

स्त्रियों के प्रति जो अत्याचार होते हैं; उनमें पर्दा मुख्य है। पर्दे से स्त्रियों के स्वास्थ्य पर वुरा प्रभाव पड़ता है। वे स्वच्छ वायु से पूर्ण लाभ नहीं उठाने पातीं। जो स्त्रियाँ पर्दे में रहती हैं वे इस विचार से कि उनको कहीं जाना नहीं है अथवा उनको कोई देखेगा नहीं, मलिन वस्त्र धारण किये रहती हैं। घर में ही वन्द रहने से कूप-मंडूक की भाँति उनका ज्ञान भी संकुचित रह जाता है। पर्दा प्रथा उठा देना निर्लज्जता का पर्याय नहीं है।

पर्दा

साधु-सेवा यद्यपि वुरी नहीं है, पर हिन्दुओं की अन्धभक्ति ने लाखों निकम्मे साधु पैदा कर दिये हैं, वे कुछ काम-धन्धा तो करते नहीं, केवल समाज पर भार रूप हैं। यदि हिंदुओं में इतनी अन्धभक्ति न हो और इन साधुओं को इस

अंधभक्ति और साधु-सेवा

प्रकार खाली बैठे खाने को न मिले तो अपने आप ये किसी न किसी काम में लग जायँ। इसी प्रकार की छोटी छोटी कुछ और बुराइयाँ भी हैं; पर अब कुछ समाज-सुधारकों के प्रयत्न से और कुछ पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से धीरे धीरे ये बुराइयाँ दूर हो रही हैं। ईश्वर वह दिन जल्दी लावे जब इनका बिलकुल अन्त हो जावे।

भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्र-भाषा और एक राष्ट्र-लिपि

राष्ट्र के लिए दो बातें आवश्यक मानी गई हैं। एक भूगोल-संबंधी एकता और दूसरी सम्मिलित राजनीतिक हित। भारतवर्ष में दोनों बातें होने के कारण उसके राष्ट्र होने में कोई सन्देह नहीं है। इसी के साथ यह बात भी निर्विवाद रूप से मानी जाती है कि राष्ट्र के लिए एक भाषा और एक लिपि आवश्यक है। इसके बिना न जातीय संगठन हो सकता है, और न एकसूत्रता आ सकती है। देश में एक सूत्र पर काम चलाने के लिए व्यापक भाषा चाहिये, जिसे सब लोग समझ सकें। शासन की सुविधा के लिए भी यह आवश्यक है कि जो भाषा जन-साधारण में बोली जाती हो उसी में कानून बनें और सारे देश में एक ही कानून होने के लिए एक व्यापक भाषा भी चाहिये। केवल शासन के सुभीते के लिए ही एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता नहीं है, वरन ज्ञान और कला-कौशल सम्बन्धी सहयोग के लिए भी एक व्यापक भाषा की आवश्यकता है।

राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए जो सुलभ हो और जिसे सब लोग समझ सकें। दूसरी बात राष्ट्रभाषा के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा शासन तथा विज्ञान और कला-कौशल सम्बन्धी लिखा-पढ़ी

अच्छी तरह हो सके। राष्ट्र-भाषा के लिए यह भी आवश्यक है कि उसमें उन्नति की गुंजाइश होते हुए भी थोड़ी स्थिरता हो अर्थात् उसके शब्दों का साधारण आकार-प्रकार निश्चित हो गया हो (यह न हो कि भाषा बनावट की ही अवस्था में हो) और उसमें थोड़ा लचीलापन भी हो अर्थात् आवश्यकताओं के अनुकूल उसमें नये शब्द बन सकें और दूसरी भाषाओं के शब्द हज़म हो सकें।

राष्ट्रलिपि के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं।

१. वह आसानी से सीखी जा सके।

२. उसमें जो लिखा जाय, वही पढ़ा जाय। उसमें सब भाषाओं के शब्द लिखे जा सकें।

३. वह जल्दी लिखी जा सके।

अब प्रश्न यह होता है कि ऐसी भाषा और लिपि कौन सी है, जिसमें ऊपर के गुण पाये जाते हैं। इस समय देश में दो ही भाषाएँ व्यापक भाषाएँ कही जा सकती हैं; एक अंगरेजी और दूसरी हिन्दी-हिन्दुस्तानी, जिसमें उर्दू भी शामिल है। शेष बँगला, मराठी आदि भाषाएँ अपने अपने प्रान्त तक ही सीमित हैं। यद्यपि अंगरेज़ी भाषा भारत के सब प्रान्तों में व्यवहृत होती है तथापि उसका व्यवहार पढ़े-लिखे लोगों में ही है, साधारण लोगों में नहीं। लोग हाई स्कूल की परीक्षा पास कर लेने पर भी उसका व्यवहार करना नहीं जानते; ग्रेजुएट हो कर भी उसपर पूरी तौर से प्रभुत्व नहीं प्राप्त किया जा सकता। कारण यह है कि वह हमारे लिए एकदम विदेशी भाषा है। और केवल विदेशी राज्य होने के कारण ही हम पर ठूँसी जाती रही है। हिन्दी भाषा देश के अधिकांश भाग में बोली और समझी जाती है। बंगाल, पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र की भाषाओं से वह इतनी मिलती

जुलती है कि वहाँ के लोग इसको थोड़े ही प्रयत्न से सीख सकें। दक्षिण के लोग भी इसको सुगमता के साथ सीख लेते हैं। इसलि हिन्दी पढ़े-लिखे लोगों की ही नहीं वरन अनपढ़ लोगों की भाषा भी बन सकती है। राष्ट्रभाषा ऐसी ही भाषा हो सकती है जो शिक्षित और अशिक्षित सब में समानरूप से समझी और बोली जा सके।

हिन्दी भाषा में स्थिरता के साथ लचीलापन भी है। यह भारतवर्ष में प्रायः एक हज़ार वर्ष से वर्तमान है और इसका रूप घुट-मँज गया है। इसमें वर्तमान भाषाओं के सब गुण हैं। विभक्तियाँ लगाने के लिए इसमें शब्दों के रूप बदलने नहीं पड़ते; इसलिए अन्य भाषाओं के शब्द इसमें अच्छी प्रकार खप जाते हैं। ऊपर हमने जो कुछ लिखा है वह बोल-चाल की भाषा के लिए लिखा है। बोल-चाल की हिन्दी और उर्दू में कुछ भी अन्तर नहीं। दोनों की क्रियाएँ और विभक्तियाँ बिलकुल एक सी हैं। दोनों में केवल इतना अन्तर है कि हिन्दी अपना शब्दकोश संस्कृत से लेती है और उर्दू फारसी से। साहित्यिक हिन्दी में संस्कृत के शब्दों की अधिकता होगी और साहित्यिक उर्दू में फारसी की। इसलिए भारत की बोलचाल की भाषा का तो कोई झगड़ा नहीं, वह ऐसी ही भाषा होगी जिसमें न अधिक संस्कृत के शब्द हों और न अधिक फारसी के। उसको चाहे हिन्दी कह लें चाहे उर्दू कह लें और चाहे हिन्दुस्तानी कह लें।

साहित्यिक भाषा और लिपि का प्रश्न ज़रा क़ठिन है। पर उसके लिए उर्दू की अपेक्षा हिन्दी अधिक उपयुक्त है। कारण यह है कि उर्दू भारत की अन्य भाषाओं—गुजराती मराठी, पंजाबी और बँगला आदि के उतना निकट नहीं है जितना कि हिन्दी। हिन्दी के समान ये सब भाषाएँ भी अपनी शब्दावली संस्कृत से ही लेती हैं। लिपि

अच्चारे में तो यह मानना ही पड़ेगा कि देवनागरी लिपि ही भारत के लिए सब से अधिक उपयुक्त है क्योंकि वह फारसी और अंगरेज़ी लिपि की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। उसमें अधिक से अधिक ध्वनियाँ हैं, तथा ध्वनियों का पूर्ण विश्लेपण कर लिया गया है। इसके सिवाय देवनागरी लिपि भारत की अन्य भाषाओं—बँगला, गुजराती, पंजाबी आदि—की लिपियों से इस बारे में भी मिलती है कि सब की वर्ण-माला एक ही है। केवल अक्षरों के रूप में ही ज़रा ज़रा अन्तर है। मराठी और देवनागरी लिपि तो हैं ही एक, इन दोनों में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं है। इसलिए इन सब प्रान्तों के निवासी फारसी की अपेक्षा देवनागरी लिपि को बहुत जल्दी अपना सकते हैं। इन सब कारणों से हिन्दी भापा और देवनागरी लिपि ही भारतवर्ष की राष्ट्रभापा और राष्ट्रलिपि होने की योग्यता रखती हैं।

संविधान-परिपद् ने भारत का जो नया संविधान बनाया है, उसमें हिन्दी और देवनागरी लिपि के उक्त सभी गुणों को स्वीकार कर लिया गया है। नये संविधान के अनुसार भारत की राष्ट्रभापा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी स्वीकार कर ली गई है। अभी एकदम अंग्रेजी को छोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि उसका प्रचार सब सरकारी दफ्तरों में बहुत अधिक है, इसलिए विधान में यह निश्चय कर दिया गया है कि हिन्दी का व्यवहार क्रमशः बढ़ाते जाना चाहिए और १५ वर्षों में हिन्दी पूर्णतः राजभाषा बन जाय। देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि माना गया है, देवनागरी अंकों की जगह अंगरेज़ी के अंकों को स्वीकार कर लिया गया है।

पंजाब में हिन्दी-प्रचार के साधन

जातीय संगठन और एक-सूत्रता के लिए देश में एक राष्ट्रभाषा का होना परम आवश्यक है। अब हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है। दक्षिण ऐसा प्रदेश है जिसकी बोलियाँ हिन्दी भाषा से सर्वथा भिन्न हैं, परन्तु वह भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपना रहा है। पंजाबी का तो हिन्दी से—विशेष कर खड़ी बोली से—एक प्रकार का कौटुम्बिक सम्बन्ध है और यहाँ के अधिकांश भाग में हिन्दी-भाषा समझी भी जाती है। इन सुभीतों के होते हुए भी पंजाब में हिन्दी का प्रचार इतना व्यापक नहीं हो रहा, जितना कि होना चाहिए। इसके कई कारण हैं।

सिक्ख लोग अपने धर्म के नाते गुरुमुखी को अपनाते हैं। वैसे उनके धर्म-ग्रन्थों का हिन्दी से विशेष सम्बन्ध है; क्योंकि गुरुवाणी प्रायः पुरानी हिन्दी में ही है; केवल लिपि का भेद है। पंजाब के हिन्दू हिन्दी के पक्ष में तो अवश्य हैं; किन्तु कुछ आलस्य-वश और कुछ परंपरा के कारण अथवा अदालत तथा अन्य सरकारी दफ्तरों में उर्दू के प्रचार के कारण वे भी उर्दू का ही व्यवहार करते हैं।

पंजाब में हिन्दी भाषा के प्रचार का बहुत कुछ प्रयत्न हो रहा है, और उसमें किसी अंश तक सफलता भी हुई है। किन्तु अभी प्रचार व्यापक रूप से नहीं हुआ है। प्रचार को जनता में व्यापक बनाने के लिए विशेष उद्योग की आवश्यकता है। पंजाब युनिवर्सिटी की हिन्दी-परीक्षाएँ हिन्दी के प्रचार में बहुत कुछ योग दे रही हैं किन्तु उनका प्रभाव अब तक बालक-बालिकाओं में ही सीमित है। कारबार करने वाले लोगों पर उनका असर कम है। जनता में हिन्दी का प्रचार करने के लिए निम्न-लिखित साधनों की आवश्यकता है।

समाचार-पत्र जनता की रुचि को बदलने में बहुत सहायक होते हैं। अभी तक पंजाब में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या बहुत थोड़ी है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उनके पढ़ने वाले कम हैं। जनता की रुचि बदलने के लिए थोड़े बलिदान की आवश्यकता है। कम से कम धार्मिक पत्रों को तो हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि अपनानी चाहिए। प्रारम्भ में उनको चाहिए कि वे कुछ लेख उर्दू में रक्खें और कुछ हिन्दी में। हिन्दी के विषयों को अधिक रोचक बनाने की कोशिश करें। कम मूल्य अर्थात् एक पैसे के दैनिक अखबार निकाले जावें, जिससे साधारण स्थिति के लोग भी उनको खरीद सकें और उन्हें पढ़ने का उद्योग करें। दैनिक हिन्दी मिलाप जालंधर से प्रकाशित हो रहा है और दिल्ली के हिन्दी अखबार भी पंजाब में जाते हैं। पर इनको अधिक व्यापक बनाने की तथा कुछ और पत्रों की आवश्यकता है।

जनता की रुचि के अनुकूल सस्ता साहित्य निकालने से भी हिन्दी के प्रचार में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। हमको ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो जनता की रुचि के साथ साथ चलता हुआ उसको सुधारने का उद्योग करे और उसमें विनोद के साथ साथ उपयोगिता का भी थोड़ा-बहुत अंश रहे।

कुछ ऐसे स्कूलों की आवश्यकता है जो साधारणतया कार्य में व्यस्त जनता को हिन्दी की शिक्षा दे सकें। साधारण जनता अपना काम-काज छोड़ कर स्कूलों या पाठशालाओं में नहीं जा सकती, किन्तु यदि ऐसे स्कूल हों जहाँ लोग फुरसत के समय जा सकें तो वे अपना समय खुशी से दे देंगे।

पंजाब में हिन्दी-प्रचार में सब से बड़ी रुकावट यह रही है कि अदालत तथा अन्य सरकारी दफ्तरों में हिन्दी को स्वीकार नहीं किया

जाता रहा। हिन्दू भी प्रायः इसीलिए अपने बालकों को उर्दू पढ़ाते रहे हैं कि उसके बिना वे अदालत या सरकारी दफ्तरों में काम नहीं कर सकते थे। यदि उर्दू के साथ साथ हिन्दी से भी सरकारी दफ्तरों में काम चलने लगे तो हिन्दी का प्रचार बहुत बढ़ जाय और हिन्दू लोग तो प्रायः अपने बालकों को उर्दू पढ़ाना छोड़ दें। अतः इस कार्य के लिए विशेष आन्दोलन की आवश्यकता है।

पंजाब के विभाजन के कारण सब मुसलमान पंजाब से पाकिस्तान चले गये हैं; इसलिए उर्दू का समर्थन अब कोई नहीं करता। परन्तु पिछली डेढ़ दो सदियों से उर्दू का जिस तरह पंजाब पर प्रायः एकाधिकार रहा है, उसे छोड़ने को आज भी हिन्दू और सिक्ख तैयार नहीं होते और असल में हिन्दी के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा यही है। जो ऊँचे सरकारी अफसर हैं या कालिजों के प्रोफेसर हैं, वे अभी तक अंग्रेजी का मोह छोड़ नहीं सके। देश की राजभाषा हिन्दी घोषित हो जाने के कारण हिन्दी का प्रचार अवश्यंभावी है। पंजाब की हिन्दी-समस्या बड़ी जल्दी हल हो सकती थी, लेकिन एक नई बाधा हिन्दी के रास्ते में आ खड़ी हुई। यह समस्या है हिन्दी-पंजाबी या नागरी-गुरुमुखी का झगड़ा। बहुत से सिक्ख पंजाब को पंजाबी और गुरुमुखी का प्रान्त बनाने को उत्सुक हैं। लेकिन पंजाब में आज भी बहुसंख्या ऐसे लोगों की है, जिनकी भाषा हिन्दी है। वे सिक्खों के ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए बीच का एक रास्ता निकालने का प्रस्ताव रखा गया है और वह यह कि अमृतसर जालंधर आदि पंजाबी प्रधान जिलों में गुरुमुखी और पंजाबी शिक्षा का माध्यम हो और कुछ साल के बाद हिन्दी भी स्कूलों में अनिवार्य कर दी जाय। इसके विपरीत हिसार, करनाल, रोहतक आदि हिन्दी-प्रधान ज़िलों में शिक्षा का माध्यम

हिन्दी हो और फिर गुरुमुखी भी अनिवार्य कर दी जाय। इस प्रकार दोनों भाषायें पंजाब के लिए अनिवार्य हो जायँगी। लेकिन यह सन्तोष-जनक हल नहीं है। पंजाब के बहुसंख्यक हिन्दी-भाषियों पर यह पंजाबी का अत्याचार है। शिक्षा का माध्यम चुनने की आज़ादी हर एक विद्यार्थी को होनी चाहिये। सिर्फ छोटे बड़े सरकारी नौकरों के लिए दोनों भाषाओं का ज्ञान आवश्यक कर दिया जाय। इससे हिन्दी का प्रचार पंजाब में बहुत बढ़ जायगा।

उर्दू और अंगरेज़ी जानने वालों को हिन्दी पढ़ाने के लिए पंजाब भर में रात्रि-पाठशालाओं का जाल बिछा देना चाहिये। सरकारी अफसरों को यह हिदायत दे देनी चाहिये कि वे हिन्दी में लिखे गये कागजों की उपेक्षा न करें, वरन अपने दफ्तरों की भाषा भी हिन्दी बना दें। लोगों से साइनबोर्ड, बही खाते और दूसरा कारोबार हिन्दी में रखने का अनुरोध करना चाहिये। उर्दू अखबारों को शनैः शनैः हिन्दी में कर देने की ओर कदम उठाना चाहिये। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी-लेखकों को उत्साहित करने के लिए पुरस्कार दे ताकि पंजाब में हिन्दी का उत्कृष्ट साहित्य निकल सके। इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह होगा कि पंजाब में हिन्दी का प्रचार अच्छा हो सकेगा।

स्त्री-शिक्षा के गुण-दोष

आज से कुछ समय पहले तक स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में यह मतभेद भले ही रहा हो कि स्त्री-शिक्षा आवश्यक है या नहीं, परन्तु आज यह बात सर्वसम्मत हो चुकी है कि स्त्री-शिक्षा आवश्यक है। इसीलिए आज यह दलील देने की आवश्यकता नहीं रही कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ पढ़ती थीं। अब स्त्री-शिक्षा का प्रचार बड़ी तेज़ी से देश

में बढ़ रहा है और गार्गी, मैत्रेयी लीलावती आदि प्राचीन स्त्रियों के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। आज स्त्री-शिक्षा के गुण सभी स्वीकार करते हैं, फिर भी इस लेख में हम स्त्री-शिक्षा के कुछ गुण-दोषों का विवेचन करेंगे।

स्त्री-शिक्षा के कुछ मुख्य गुण या लाभ निम्नलिखित हैं :—

(१) मानसिक विकास

(२) व्यवहार-कौशल

(३) स्वास्थ्य-सुधार

(४) बच्चों का सुधार

(५) आत्मनिर्भरता

स्त्री-शिक्षा का सबसे पहला लाभ यह है कि उसके कारण स्त्रियाँ कूप-मंडूक नहीं रहतीं। उनके संसार-सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि होती है।

मानसिक विकास

उनका दृष्टिकोण विस्तृत हो जाता है। उनमें प्रत्येक बात के हानि-लाभ को विचारने की सामर्थ्य आ जाती है। जातीय जीवन और रीति-रिवाजों के वास्तविक तत्त्व समझने की योग्यता आ जाती है; वे अन्ध-विश्वासों का शिकार नहीं रहतीं। संसार की प्रगति को जान कर वे देश की उन्नति में सहायता दे सकती हैं। अपने पतियों के साथ विचार-विनिमय करके उनके कार्य में सहयोग दे सकती हैं।

शिक्षा द्वारा स्त्रियों को न केवल बातचीत करने की योग्यता प्राप्त होती है वरन वे व्यवहार-कुशल भी हो जाती हैं। वे हिसाब-किताब रख सकती हैं। गार्हस्थ्य-शास्त्र की शिक्षा से वे घर को स्वच्छ और परिमार्जित रखना तथा सीना-पिरोना, बुनना-काढ़ना, सुन्दर रसोई बनाना, कपड़ों की देख-भाल करना, गाना-

व्यवहार-कौशल

बजाना आदि सब बातें जिनसे कि जीवन सरस और सुखमय बन सकता है, जान जाती हैं। यदि वे अपने ज्ञान का सदुपयोग न करें तो उनका दोष है न कि शिक्षा का।

स्वास्थ्य-सुधार

स्त्री-शिक्षा का स्वास्थ्य से विशेष सम्बन्ध है। स्त्रियाँ गृह की स्वामिनी होती हैं। बच्चों का तथा प्रायः सब घर का स्वास्थ्य उनके हाथ में होता है। हमारे बहुत से रोग सफाई के अभाव के कारण होते हैं। शिक्षित स्त्रियाँ रोगों से बचाव के लिए आवश्यक साधनों का प्रयोग कर हमको रोगों से सुरक्षित रख सकती हैं। परिवार के लोगों के रोग-ग्रस्त हो जाने पर शिक्षित स्त्रियाँ स्वयं साफ रह कर अपने बच्चों को भी साफ रख सकती हैं। वे स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धांतों के ज्ञान से अपने परिवारों को बहुत लाभ पहुँचा सकती हैं।

बच्चों का पालन

बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा माता से ही मिलती है। शिक्षित माताएँ अपने बच्चों को अच्छे तरीके से शिक्षा दे सकती हैं, उन्हें शुरू से नियम-पालन का अभ्यास करवाती हैं, तथा उन्हें बुरी आदतें न पड़ें इसका ध्यान रखती हैं। इसके विरुद्ध अशिक्षित माताओं के बच्चे प्रायः छोटी अवस्था से ही बुरी संगत में पड़ जाते हैं।

आत्म-निर्भरता

स्त्री-शिक्षा का सब से बड़ा लाभ यह है कि इससे स्त्री, यदि कभी आवश्यकता पड़े तो, अपना और अपने बच्चों का स्वयं निर्वाह कर सकती है। कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी हैं जिन्हें वैधव्य-दुख देखना पड़ता है। उस हालत में पति के बाद स्त्री की देख-भाल करने वाला कोई नहीं होता। पति के बाद वे अपने सम्बन्धियों को भार-स्वरूप प्रतीत होती हैं और सब उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं। इस हालत में यदि स्त्री शिक्षित हो तो वह किसी पर

भार-स्वरूप नहीं होती, बल्कि अपना और अपने आश्रितों का गुज़ारा स्वयं कर सकती हैं। बहुत से लोग अपनी ज़िन्दगी का बीमा इसलिए करवाते हैं कि यदि दुर्भाग्य से उनकी पत्नी पर कभी वैधव्य की विपत्ति आ पड़े तो उसे कुछ सहायता मिल सके। पर बीमा करवाने से अच्छा यह है कि स्त्री को शिक्षा द्वारा इस योग्य बना दिया जाय कि आवश्यकता हो तो वह अपना निर्वाह स्वयं कर सके।

स्त्री-शिक्षा के प्रचार के साथ साथ पढ़ी-लिखी लड़कियों में कुछ ऐसे दोष भी दीखते हैं, जो लोगों की आँखों में खटकते हैं और इन्हीं दोषों के कारण बहुत से लोग स्त्री-शिक्षा की आलोचना करने लगते हैं। किन्तु यह सब दोष शिक्षा के नहीं है, शिक्षा की दूषित पद्धति के हैं जो दुर्भाग्य से देश में प्रचलित है। इस पद्धति के कुछ दोष निम्नलिखित हैं।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति बालक और बालिकाओं पर फैशन का भूत चढ़ा कर उनको अमितव्ययिता की ओर ले जाती है। मितव्ययिता के साथ भी स्वच्छता आ सकती है, किन्तु आजकल की अधिकतर पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ केवल अस्वच्छता का ही खयाल नहीं रखतीं; वरन बारीक सुन्दर और बहुमूल्य कपड़ों की पक्षपातिनी बन जाती हैं। वे सौंदर्य के स्वास्थ्य-सम्बन्धी साधनों को छोड़ कर क्रीम पाउडर आदि कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने लगती हैं।

अमितव्ययिता

यद्यपि शिक्षित स्त्रियाँ सात समुद्र पार की बात जान जाती हैं, तथापि वे अपने घर की बातों की ओर ध्यान नहीं देतीं। अनपढ़ स्त्रियों के समान वे परिश्रमशील भी नहीं रहतीं। वे अपने हाथ से काम करना पसन्द नहीं करतीं। नौकरों पर ही वे अधिकतर निर्भर रहने लगती हैं।

अव्यावहारिकता

उनके व्यवहार में स्वाभाविकता नहीं रहती। वे सब बातें किताबों के ही आधार पर करती हैं। किताबें अनुभव-पूर्ति के लिए होती हैं उसके निराकरण के लिए नहीं। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ अनपढ़ स्त्रियों से मेल-जोल रखना पसन्द नहीं करतीं। वे एक दूसरे ही संसार में रहने लगती हैं। किताबों के संसार में रहते-रहते वास्तविक संसार से वे कुछ दूर पहुँच जाती हैं और काल्पनिक जीवन व्यतीत करने लगती हैं।

किन्तु ये सब दोष ऐसे नहीं हैं कि शिक्षा के कारण अवश्य आ जाते हों। उपर्युक्त दोषों को बचाते हुए भी स्त्रियों को शिक्षा दी जा सकती है और अवश्य देनी चाहिए ताकि वे भारतीय रमणियों के सेवा-शील- और सदाचार-सम्बन्धी उच्च आदर्श को पूरा करती हुई देश और जाति के लिए गौरव का विषय बन जावें।

वर्तमान शिक्षा का प्रभाव

वर्तमान समय में शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। लोग अपने बालक और बालिकाओं को पढ़ाने में अधिक रुचि लेने लगे हैं। यद्यपि ग्रामों में शिक्षा का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है तथापि शहरों में पढ़ने-लिखने वालों के लिए संस्थाओं का अभाव नहीं है। किन्तु हमको देखना यह है कि शिक्षा के प्रचार के साथ शिक्षा के ध्येय तथा साधनों में कुछ उन्नति हो रही है या नहीं और उसका हमारे बालक-बालिकाओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

शिक्षा के ध्येय में तो अवश्य पहले से कुछ उन्नति हुई है। लोग अब शिक्षा को केवल परीक्षा पास करने का साधन नहीं समझते। अब वे इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि सच्ची शिक्षा वही है जिससे मनुष्य की शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों

का पूर्ण विकास हो, किन्तु बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि इससे विशेष उन्नति नहीं हुई।

हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि वर्तमान शिक्षा से कोई लाभ नहीं हुआ। उससे विद्यार्थियों का मानसिक क्षितिज अवश्य विस्तृत हुआ है, किन्तु और सब बातों में उनका यथेष्ट रूप से विकास नहीं हो रहा। आगे हम विकास के प्रत्येक क्षेत्र पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

शारीरिक उन्नति

हमारे स्कूलों और कालेजों में शारीरिक उन्नति के लिए नाना प्रकार के खेल खिलाये जाते हैं, जिनसे बालकों के शरीर में स्फूर्ति आती है। बैठे रहने की अपेक्षा खेल से उनका स्वास्थ्य भी सुधरता है। खेलों के कारण सामाजिकता भी बढ़ती जाती है। किन्तु साथ साथ फैशन की भी तरक्की हो रही है और जीवन अधिक पेचीदा बनता जा रहा है। टेनिस के लिए अलग कपड़े चाहिएँ, फुटबॉल के लिए अलग। रहन-सहन को खर्चीला बना लेना इतना बुरा नहीं। किन्तु प्रश्न यह है कि उन्नत रहन-सहन के अनुकूल हमारे विद्यार्थी धन कमाने की योग्यता भी प्राप्त कर लेते हैं या नहीं? हमारे पैर इतने बढ़ जाते हैं कि वे रजाई से बाहर निकलने लगते हैं। विदेशी खेलों से स्फूर्ति अवश्य आती है, किन्तु उनसे हमारे विद्यार्थियों में परिश्रम करने की शक्ति नहीं बढ़ती। हमारे विद्यार्थी गेंद का बड़ा अच्छा निशाना लगा लेंगे, उसको बहुत दूर भी फेंक देंगे, किन्तु जहाँ पर हाथ से कुछ काम करने का प्रश्न आता है वहाँ वे मुँह ताकते रह जाते हैं। खेल के क्षेत्र से बाहर आजकल के विद्यार्थी बहुत आलसी होते हैं; उनमें स्वावलंबन का अभाव रहता है। विद्यार्थियों के मन में प्रायः अमीरों के भाव भर जाते हैं, वे घर के साधारण कार्य करने में

भी लज्जा का अनुभव करते हैं।

यद्यपि आजकल के विद्यार्थी पहले के विद्यार्थियों की अपेक्षा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तथापि उनका ज्ञान अपरिपक्व रहता है।

मानसिक उन्नति

उनकी सारी सफलता परीक्षा के परिणाम पर रहती है। वे साल भर आराम से गुजार कर परीक्षा के दिनों में दिन रात एक करके स्वास्थ्य खराब कर लेते हैं। जो कुछ पढ़ते हैं, उसको परीक्षा-भवन में वमन कर देते हैं। उनका पाठ उनके मन में परिपक्व हो पुष्ट नहीं होता, इसलिए भारतवर्ष में मौलिकता का अभाव बना रहता है। हमारे देश में वसु, राय, रमन सदृश इने गिने लोग हैं। यूरोप से हम विद्या का जो ऋण ले रहे हैं, उसको चुका नहीं रहे। इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा रुचिकर नहीं बनाई जाती और जो कुछ हमें पढ़ाया जाता है उसका क्रियात्मक रूप से अभ्यास नहीं कराया जाता।

हमारी शिक्षा विदेशी भाषा में होती है, इस प्रकार हम अपनी शिक्षा का लाभ दूसरों को नहीं दे सकते। हममें और अशिक्षित लोगों में अन्तर पड़ जाता है। इस कारण ज्ञान और क्रिया का भी विच्छेद हो जाता है। हम में ज्ञान है तो जनता में क्रिया और शक्ति है। वे लोग हमारे ज्ञान का पूरा पूरा लाभ नहीं उठा सकते, अतएव देश में यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाती। यह खुशी की बात है कि अब मातृभाषा में उत्तर देने का प्रचार बढ़ रहा है।

वर्तमान शिक्षा में धर्म की ओर तो बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है, जिसके कारण हमारे नवयुवक भारतीय संस्कृति से भी

आध्यात्मिक उन्नति

अपरिचित रहते हैं। बहुत से लोगों को रामायण और महाभारत की कथा भी नहीं मालूम होती। वे भारत के प्राचीन साहित्य को केवल दन्तकथा समझ उससे

अपरिचित रहते हैं। इससे विद्यार्थियों का धर्म और ईश्वर के प्रति आदर नहीं रहा। साथ ही वे बड़ों का भी आदर नहीं करते। यद्यपि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य का आदर करना सिखाती है, तथापि हमारे विद्यार्थी-गण उन लोगों को, जो उनका-सा रहन-सहन नहीं सीखे हैं, एक प्रकार का अछूत-सा समझते हैं। उनमें जातीय रहन-सहन और जातीय संस्थाओं के लिए आदर नहीं रहता।

भावी जीवन में अपने रहन-सहन और आदर्शों के अनुकूल आय न होने के कारण वे सदा असन्तुष्ट रहते हैं। असन्तोष के कारण उनके चित्त में सदा ग्लानि बनी रहती है, जिससे उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कहीं कहीं आत्म-हत्या तक की भी नौबत आ जाती है। आदर्शों की भिन्नता के कारण उनका पारिवारिक जीवन भी अच्छा नहीं होता। जिस जीवन-साफल्य के लिए वे शिक्षा ग्रहण करते हैं, उससे वे कोसों दूर रहते हैं।

ग्राम-वास अथवा नगर-वास

प्रायः हम सभी जानते हैं कि ग्राम किसे कहते हैं और नगर अथवा शहर किसे कहते हैं। ग्राम साधारण कोटि के प्रायः छ मकानों के छोटे समूह को कहते हैं। इनके चारों ओर खेत, खुले मैदान, चरागाह और फलदार वृक्षों के बाग या जंगल होते हैं। इनमें मकानों की संख्या कम होने के कारण इनके निवासी अपना जीवन प्रायः खुले मैदानों और खेतों में व्यतीत करते हैं। शहरों में आबादी अधिक और घनी होती है। उनमें मकानों का ताँता इतनी दूर तक चला जाता है कि उनके रहने वाले अपने को मकानों के बीच में ही घिरा पाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके संगठन, रहन-सहन और व्यवहारों में अन्तर

होता है। दोनों की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं। दोनों ही में अपने अपने आनन्द हैं और दोनों ही में अपनी अपनी कठिनाइयाँ हैं।

ग्रामवासी प्रकृति की गोद में पलते हैं। दिन भर खुले मैदान में सारा दिन गुज़ारते हैं। सूर्य की रश्मियाँ, स्वच्छ खुली वायु और दिन भर की दौड़-धूप ग्राम-वासियों के शरीर को हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्तिमय बना देती है। प्राकृतिक घटनाएँ ही उनके जीवन को नियमित करती हैं। ग्राम-कुक्कुट की पुकार उनको जगाने वाली घड़ी है। वे सवेरे ही घर से बाहर आ प्रकृति के खुले आँगन में खेलने लगते हैं। शस्य-श्यामला, सुजला, सुफला, मलयज-शीतला मातृ-भूमि के पुण्य दर्शनों का लाभ उन्हीं को मिलता है।

ग्रामवासी शहर की झंझटों से दूर रहते हैं। बड़े-बड़े कारखानों की चिमनियों का धुआँ उनके पास की वायु को विषैला नहीं बनाता। घोड़ों की टाप, मोटरों की पों पों और कल-कारखानों की खट खट उनकी सुखनिद्रा में बाधा नहीं डालती। उनका भोजन सरल और स्वास्थ्यकर होता है। उनके यहाँ ताज़ा दूध, दही, मक्खन हर समय हो जाने के लिए तैयार रहता है। फसल का अन्न और ऋतु के फल सबसे पहले उन्हीं को मिलते हैं।

ग्राम-वास में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हैं, किन्तु वे ऐसी नहीं जिनका निराकरण न हो सके। ग्राम में सफाई की बड़ी कमी होती है। कूड़ा-करकट घरों के बाहर ही फेंक दिया जाता है, गंदे पानी के निकास का कोई प्रबन्ध नहीं होता, जिससे मक्खी-मच्छर बहुत हो जाते हैं।

शिक्षा के साधनों का भी ग्राम में अभाव होता है। स्कूल पाठ-शालाएँ आदि बहुत कम होती हैं। उच्च शिक्षा के साधनों का तो बिलकुल

ही अभाव होता है। पुस्तकालय तथा वाचनालय आदि कोई नहीं होता। समाचार-पत्र बहुत कम पहुँचते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं, बिजली आदि, का अभाव होता है। बीमारी की हालत में कोई अच्छा डाक्टर या दवाई मिलना कठिन होता है। पर अब पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान ग्राम-सुधार की ओर आकर्षित हो रहा है। सरकार भी ग्रामवासियों की दशा सुधारने का यत्न कर रही है।

नगर-वास में सबसे बड़ा लाभ शिक्षा का है। नगर में नाना प्रकार के विद्यालय होते हैं। नगर विचार-शक्ति के केन्द्र हैं। सारे सुधारों की आयोजनाएँ नगरों से ही उठती हैं। नगर में मानव-मस्तिष्क की महत्ता का परिचय मिलता है। नगर में मनुष्य प्रकृति के शासक के रूप में दिखाई पड़ता है। बिजली उसकी सेवानुवर्तिनी बन कर उसके घर को आलोकित और परिष्कृत करती है। ज़रा बटन दबाने की देर नहीं कि सारा शहर शुभ्र प्रकाश से चमक उठता है। नई देहली को देखिए। उसमें उजेले और अँधेरे पाख में अन्तर ही मालूम नहीं होता। गर्मी में बिजली का पंखा और जाड़ों में बिजली की अँगीठी मनुष्य को शीत और उष्णता के आक्रमणों से बचाये रखती है। शहर में यद्यपि बीमारियाँ अधिक होती हैं तथापि उनके निवारण के साधन भी मौजूद रहते हैं।

नगरों के रहने वाले तंग मकानों में बन्द रहते हैं। वे जिधर दृष्टि डालते हैं उधर मकान ही मकान दिखाई पड़ते हैं। लोग छोटी-छोटी कोठरियों में भेड़-बकरियों की भाँति बन्द रहते हैं। घर से निकल कर भी लोग दफ्तरों और दुकानों के कैदखाने में पड़ जाते हैं। दिन में बिजली जलानी पड़ती है। सूर्यदेव के स्वास्थ्यकर प्रकाश से वंचित रहते हैं। हाथ-पैर चलाने का भी उन्हें मौका नहीं मिलता। साइकल और मोटरकारों से समय की बचत अवश्य होती है, किन्तु लोग

ग्रामवासियों की अपेक्षा कमज़ोर हो जाते हैं। स्त्रियाँ घरों में रहते रहते क्षय रोग से ग्रस्त हो जाती हैं और समय से पूर्व ही मृत्यु के मुख में पहुँच जाती हैं। लोग खुली वायु के लिए तरसते हैं और उसके लिए उन्हें वहुत कीमत देनी पड़ती है।

नगरों का जीवन वड़ा कृत्रिम और मँहगा है। सारा जीवन कृत्रिम वन्धनों से वँधा रहता है। समय समय के कपड़े और समय समय के जूते मनुष्य का दिवाला निकाल देते हैं। वढ़ती हुई फिजूलखर्ची के कारण मनुष्य को धन कमाने के लिए दिन-रात एक कर देना पड़ता है। वढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे वहुत वार अनुचित उपायों का भी आश्रय लेना पड़ता है। दिन भर उसे ज़रा भी चैन नहीं मिलता। कहीं इस सभा में जाता है तो कहीं उस डेपुटेशन में शामिल होता है। न घर की खवर रहती है; न वाल वच्चों की। न समय पर खाना मिलता है, न समय पर सोना।

ग्रामवास तथा नगरवास दोनों ही के लाभ हैं और दोनों ही में कुछ सुधार की आवश्यकता है। शहर-वासियों को चाहिए कि वे शिक्षा और औषधों आदि के प्रचार से ग्राम-वासियों को लाभ पहुँचावें। ग्राम-वासियों का सुधार करते हुए शहर वाले अपने सुधार को भूल न जावें। वे मशीनों से लाभ उठावें, किन्तु मशीनों के गुलाम न वन जावें। प्रकृति की उपासना के लिए समय निकालें किन्तु प्रकृति के विलकुल दास न वन जावें। उन्हें चाहिए कि स्वयं परिश्रम करके अपने जीवन को स्वच्छ सरल और स्वाभाविक वनावें।

प्राचीन और नवीन सभ्यता

जब हम प्राचीन और नवीन सभ्यता कहते हैं, तब हमारा अभिप्राय पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता से होता है। पूर्वी सभ्यता का प्रतिनिधि भारत कहा जा सकता है तथा पश्चिमी सभ्यता का प्रतिनिधि आधुनिक यूरोप। इन दोनों सभ्यताओं में से कौन सी श्रेष्ठ है, इसका विचार करने से पहले दोनों सभ्यताओं में क्या अन्तर है, इस पर दृष्टि डाल लेनी चाहिए।

प्राचीन सभ्यता में यदि श्रद्धा आदर-सम्मान तथा धार्मिक भावों की अधिकता है, तो आधुनिक सभ्यता समानता स्वतन्त्रता भ्रातृभाव तथा राष्ट्रीयता की उपासिका है। जहाँ प्राचीन सभ्यता के उपासक बच्चों को माता के दूध के साथ नम्रता का पाठ पढ़ाते हैं— "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव" का मन्त्र उनके हृदयस्थल पर अंकित करते हैं और कहते हैं—माता पिता को देवता समझो, गुरु को प्रणाम किया करो, बड़े-बूढ़ों के पैर छुआ करो, ब्राह्मण तथा उच्च वर्ण की पूजा किया करो, राजा ईश्वर का अवतार है अतः उसके सामने सिर झुकाओ, पति परमेश्वर है अतः उसकी उपासना करो, वहाँ आधुनिक सभ्यता के उपासक कहते हैं—मनुष्य मात्र में कोई भेदभाव नहीं, कोई पूज्य और कोई अछूत नहीं, राष्ट्र की उन्नति करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

पुरातन सभ्यता का लक्ष्य यदि सादगी और आवश्यकताओं की कमी है, तो आधुनिक सभ्यता का लक्ष्य आवश्यकताओं को बढ़ाना है। पुरातन सभ्यता के उपासक कहते हैं कि जीव जन्म से ले कर मरने तक एक वासना के बाद दूसरी वासना, एक कमी के पीछे दूसरी कमी को

लादे रहता है, उसे दम लेने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। अन्त में उन कर्मों को दूसरे के सिर पर लाद कर एकाएक वह मृत्यु के गढ़े में गिर जाता है। वासनाओं के लोभ से जन्म भर अनन्त कर्म करते जाना एक प्रकार की गुलामी है, इस गुलामी की जड़ उखाड़ना इस तृष्णारूपी राक्षसी से छुटकारा पाना, इस कर्म-पाश को काट कर मुक्त होना ही मनुष्य मात्र का ध्येय है। परन्तु आधुनिक सभ्यता के उपासक कहते हैं कि जिस ज़ाति की आवश्यकताएँ जितनी वढ़ी हुई हैं, वह जाति उतनी ही समृद्ध तथा उतनी ही सभ्य है।

पुरातन सभ्यता में यदि आध्यात्मिकता की प्रधानता है, सांसारिक भावनाओं का अभाव है, जीवन को नश्वर समझ कर आत्मा को उन्नत करने और आत्मतृप्ति पाने का विधान है, तो आधुनिक सभ्यता प्रकृति की उपासिका है, वह विज्ञान द्वारा प्रकृति को वश में करने के नित्य नये मार्ग ढूँढती रहती है। जल-स्थल सबको उसने वश में कर लिया है। वह आकाश पर भी वहुत कुछ अधिकार कर चुकी है। भाफ और विजली आदि असीम शक्तियों को वश में करके उसने संसार की काया पलट दी है। पर अभी उसकी दौड़ समाप्त नहीं हुई। हो भी कैसे? क्योंकि जीव की आवश्यकताओं की पूर्ति ही उसका लक्ष्य है। सांसारिक समृद्धि ही इस सभ्यता की कसौटी है।

सारांश यह कि पुरातन सभ्यता का ध्येय 'त्याग' है और आधुनिक सभ्यता का लक्ष्य 'प्राप्ति'। प्राचीन सभ्यता में त्यागी का आदर था तो आजकल उसका आदर होता है जिसके पास सबसे अधिक ऐश्वर्य हो। प्राचीन सभ्यता में त्यागी संन्यासी के सामने राजा भी सिर झुकाता था। आज समृद्धिशाली दूसरों को तुच्छ समझता है। पुरातन सभ्यता नम्रता और सादगी का पाठ पढ़ाती थी तो आधुनिक सभ्यता आत्म-

सम्मान समानता तथा आडम्बर का उपदेश देती है।

दोनों सभ्यताओं में कौन सभ्यता अच्छी है यह प्रश्न बड़ा जटिल है क्योंकि सभ्यता किसी कसौटी पर परखी नहीं जा सकती। उसमें देश काल तथा जातीय विचारों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। यदि भारत और प्राच्य देश पुरातन सभ्यता के उपासक हैं तो सब पाश्चात्य देश आधुनिक सभ्यता के।

अब तक प्राच्य देश प्रायः गुलाम थे; गुलामों की सभ्यता ही क्या? उनकी गिनती तो असभ्यों और जंगलियों में की जाती है। अतएव पुरातन सभ्यता को अच्छा न कहने की प्रथा सी चल पड़ी है। परन्तु इतना कहना ही पड़ेगा कि जीव को चिरशान्ति वासनाओं की कमी से ही मिल सकती है। आज इस तृष्णा की दौड़ में पड़ कर संसार युद्ध-ज्वालाओं में जल रहा है; इसलिए इससे ऊब कर अनेक यूरोपीय विद्वान कहने लगे हैं कि यह सभ्यता मनुष्य मात्र को महानाश की ओर ले जा रही है। वे इस सभ्यता को एक रोग कहते हैं; अतएव पुरातन सभ्यता को उच्च स्थान देना पड़ता है।

देश का नया संविधान

दो सदियों की गुलामी के बाद यह प्रथम अवसर है जब कि जनता के प्रतिनिधियों ने अपने देश के लिए शासन-विधान तैयार किया है। इसलिए इस विधान का महत्त्व हमारे लिए बहुत अधिक है।

ब्रिटिश सरकार ने १९४६ ईस्वी में एक विधान-परिषद् की स्थापना की थी। उथल-पुथल, रक्त-पात और क्षोभ तथा लज्जाजनक दुर्घटनाओं में से देश के गुजरने के बाद विधान-परिषद् ने नवम्बर १९४९ में एक विधान तैयार किया। यह विधान २६ जनवरी १९५० से

देश में लागू हुआ। इस विधान की विशेपताएँ निम्नलिखित हैं:—

(१) यह लोकतंत्र विधान है। राजतंत्र पद्धति को इसमें विलकुल स्थान नहीं दिया गया। इंगलैंड का राजा अव हमारा राजा नहीं रहा और न कोई नया राजा वनाया गया है। देश की जनता ही अपने प्रतिनिधियों द्वारा देश पर शासन करती है। मन्त्रि-मंडल जनता के प्रतिनिधियों के सामने हर तरह से जिम्मेवार होता है। इस तरह भारत-वर्प संसार के उन्नततम राष्ट्रों की श्रेणी में आ गया है।

(२) शासन-विधान में नागरिकों के सव मौलिक अधिकारों की घोपणा की गई है। प्रत्येक नागरिक को वोलने, लिखने, मत देंने, देश भर में घूमने और कहीं भी निवास करने, और अपना निःशस्त्र संघटन करने का अधिकार दिया गया है। धर्म, जाति और लिंग के आधार पर किसी तरह का कोई भेद भाव नहीं किया जायगा। अदालत द्वारा विना दंड दिये किसी को गिरफ्तार नहीं किया जायगा। किसी की सम्पत्ति पर विना मुआवजा दिये जवरदस्ती अधिकार नहीं किया जायगा।

(३) हिन्दू धर्म की कलंक स्वरूप अस्पृश्यता की प्रथा को कानूनन समाप्त कर दिया गया है।

(४) देश का शासन-विधान न वहुत अधिक केन्द्रित है न वहुत अधिक विकेन्द्रित है; अर्थात् प्रान्तीय सरकारों को काफी स्वतंत्रता देने के वाद भी केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह समय समय पर प्रान्तों पर नियन्त्रण रख सके, जिससे वहाँ अराजकता, अव्यवस्था और अशान्ति को रोका जा सके। इस तरह केन्द्रीय और संघ विधान के वीच की स्थिति को स्वीकार किया गया है।

(५) शासन-विधान में अमेरिका की तरह से राष्ट्रपति को वहुत अधिक अधिकार नहीं दिये गये। इंगलैंड की भाँति मन्त्रिमंडल ही

शासन के लिए उत्तरदायी रखा गया है।

(६) इस लोकतंत्र में हरएक बालिग को मतदान का अधिकार दिया गया है। स्त्री हो या पुरुष, अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित, चाहे वह किसी धर्म का मानने वाला हो, सब को, जो २१ साल से कम के नहीं हैं, चुनाव में भाग लेने का अधिकार दिया गया है।

(७) इस विधान में सांप्रदायिकता को स्वीकार नहीं किया गया। हिन्दू मुसलमान या सिख सब सम्मिलित रूप से चुनाव में भाग लेंगे। किसी सम्प्रदाय को चुनाव में पृथक् रूप से भाग लेने का अधिकार नहीं है। और न इसके लिए अलग सीटें सुरक्षित रखी गयी हैं।

(८) इस विधान के अनुसार सब रियासतें भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गई हैं। पहले की तरह से वह अलग अलग नहीं रहीं। बहुत सी छोटी छोटी रियासतें समीपवर्ती प्रान्तों में मिला दी गई हैं। कुछ बड़ी रियासतें आपस में मिल कर एक संघ का रूप धारण कर चुकी हैं।

(९) इस विधान में देश के विभाजन को स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए सिन्ध, सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब आदि को भारत संघ की सीमा से बाहर रखा गया है।

(१०) रूस की भाँति यह विधान साम्यवादी नहीं है, क्योंकि इसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार किया गया है। किन्तु इसके साथ साथ उत्पत्ति के समान बँटवारे के उद्देश्य को भी सामने रखने की हिदायत की गई है।

(११) विधान-परिषद् ने सरकार को कुछ जरूरी हिदायतें भी दी हैं। सम्पत्ति का बहुत अधिक केन्द्रीकरण न होने पाये और मजदूरों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा जाय, ग्राम-पंचायतों को प्रोत्साहन, मद्य-निषेध गोरक्षा जनशिक्षा आदि की ओर ध्यान, अन्तरराष्ट्रीय

शान्ति और सुरक्षा की चिन्ता।

नये विधान के अनुसार देश का नाम 'भारत' रखा गया है और देश की राजभापा और लिपि हिन्दी और नागरी। देश का प्रमुख शासक राष्ट्रपति और राज्य (प्रान्त) का प्रमुख शासक राज्यपाल होगा। दोनों अपने अपने मन्त्रिमंडल की सलाह से काम करेंगे, यद्यपि विशेप परिस्थितियों में विशेप अधिकार भी दिये गये हैं। देश में कानून बनाने के लिए संसद (Parliament) और राज्यों में विधान सभा होगी। इन सभाओं का चुनाव बालिग मताधिकार द्वारा होगा। राष्ट्रपति का चुनाव केन्द्र और राज्यों की प्रतिनिधि सभाएँ करेंगी और राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। देश में एक उच्चतम न्यायालय रहेगा जो शासन से बिलकुल स्वतन्त्र रह कर सारी न्याय-व्यवस्था का नियंत्रण करेगा।

दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया

सचमुच संसार में रुपया सबसे बड़ी चीज़ है। इसके सामने कोई बड़ा बन कर खड़ा नहीं रह सकता; सब को छोटा बनना पड़ता है। बच्चे से ले कर बूढ़े तक इसे बड़ा मानते हैं, बड़ा समझते हैं और देवता की तरह पूजते हैं। प्रायः देखा जाता है कि रुपये का नाम सुनते ही सबके कान चौकन्ने हो जाते हैं और यदि कहीं रुपये की बाबत कोई झगड़ा खड़ा हो जाय, तो संसार में पिता पुत्र की परवाह नहीं करता और पुत्र पिता के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल जाता है। रुपये के कारण ही भाई भाई आपस में जानी दुश्मन हो जाते हैं।

रुपये-पैसे का वास्तविक ज्ञान न होते हुए भी बचपन से ही मनुष्य उससे प्रेम करना आरम्भ करते हैं। यह प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता

चला जाता है और मनुष्य के हृदय में उसी गति से रुपये के प्रति मोह की भावना बढ़ती जाती है। बचपन में केवल एक पैसा पा कर जो अनन्त आनन्द और सन्तोष होता है, बड़ी अवस्था में हज़ारों लाखों और करोड़ों रुपये पा कर भी वैसा आनन्द और सन्तोष प्राप्त नहीं होता। मनुष्य रुपये को ही अपना सर्वस्व समझता है। उसके लिए वह दिन रात कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म किसी का ख्याल नहीं करता।

जब रुपये की मात्रा बढ़ जाती है तो मनुष्य उसी के बल पर अपने आपको और संसार को नाच नचाता है। असत्य को सत्य, पाप को पुण्य, गलत को ठीक, व्यभिचार को सदाचार, पापात्मा को धर्मात्मा और धूर्त को सज्जन बनाने वाला रुपया जगत् की आँखों पर पर्दा डाल देता है। रुपये की सफेदी के सामने संसार की आँखें चौंधिया जाती हैं और वे दुर्गुणों को नहीं देख सकतीं। प्रायः देखा जाता है कि अदालतों में झूठे मुकदमे वाले अपने धन के बल पर सच्चे बन जाते हैं और दुनियाँ ऐसे लोगों की सचाई का समर्थन करती है।

रुपये के रुष्ट होने पर मनुष्य का जीवन दुःखमय हो जाता है। भाई-बन्धु, मित्र और नातेदार भी मुँह मोड़ लेते हैं। यहाँ तक कि रुपये से रहित मनुष्य के लिए संसार में जीना भी कठिन हो जाता है। एक संस्कृत कवि का कहना है—"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" अर्थात् सब गुणों का आश्रय धन ही है। धन न हो तो मनुष्य गुणवान् होता हुआ भी गुणहीन है। सच तो यह है कि जिसके पास रुपया है; वह पुण्यात्मा है, धर्मात्मा है, राजा है, बादशाह है, मालिक है, स्वामी है, परोपकारी है, दीनबन्धु है, सब कुछ है।

इसलिए यदि संसार में बड़ा बनना हो, तो रुपये की आराधना करनी चाहिए। रुपये से संसार की कोई भी अलभ्य वस्तु खरीदी जा

सकती है। विद्या, परमार्थ, परोपकार, धर्म, सुख, ऐश्वर्य, पुण्य—सभी कुछ रुपये से खरीदा जा सकता है। व्यभिचार और वड़े से वड़ा पाप भी रुपये की छत्रच्छाया के नीचे अनन्त पुण्य का रूप धारण कर लेता है। उसे कोई कुछ नहीं कह सकता—सव कोई उससे डरते हैं। फिर भला क्यों न कहें—

"दादा वड़ा न भैया, सव से वड़ा रुपैया"।

हिम्मत बिन किस्मत नहीं अथवा उद्योग

भारतवर्ष में वहुत से लोग ऐसे हैं जो किस्मत वा भाग्य में विश्वास करते हैं। उन लोगों का कथन है कि जो कुछ संसार में होता है और होगा उसको ईश्वर ने पहले ही से निर्धारित कर रक्खा है। हम अपने उद्योग से उसे अन्यथा नहीं कर सकते। हिन्दू लोग तो पूर्व जन्मों के कर्मों को भाग्य के निर्माण का कारण भी वतलाते हैं, किन्तु और धर्म वाले भाग्य को ईश्वर की अकारण इच्छा का फल वतलाते हैं। जो हो, भाग्यवादी लोग एक प्रकार से आलसी और निराशावादी हो जाते हैं। लोगों की यह धारणा ठीक नहीं कि हम अपने उद्योग और पुरुषार्थ से अपने भाग्य को वदल नहीं सकते। ईश्वर ने हमको विवेक वुद्धि और संकल्प शक्ति दी है कि हम दो मार्गों में से एक मार्ग का निश्चय कर सकें। यदि ईश्वर को सव काम अपनी ही इच्छा से करना होता तो वह मनुष्य को वुद्धि विवेक और साहस न देता। इसके साथ ही यदि ईश्वर ही सव कुछ करता होता तो वह मनुष्य को भले वुरे का उत्तरदायी न ठहराता और न शास्त्र के उपदेश का कुछ फल होता। ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्र वनाया है। मनुष्य ही अपने भाग्य का विधायक है। वह अपने इस जन्म के कर्मों से पिछले जन्म के फलों को उसी प्रकार दूर

कर सकता है जिस प्रकार आज उपवास रखने से हम पिछला अजीर्ण दूर कर सकते हैं।

पुरुषार्थ के बिना कुछ काम नहीं होता। नीति में कहा है कि "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः" और "न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः" अर्थात् "उद्योगी वीर पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है" तथा "सोते हुए सिंह के मुख में मृग नहीं चले जाते—सिंह को भी बिना हाथ-पैर चलाये भोजन नहीं मिलता"। किस्मत का सहारा प्रायः आलसी लोग लिया करते हैं। तुलसीदास जी ने कहा है:—

"कादर मन कहँ एक अधारा, दैव दैव आलसी पुकारा।"

संसार में लोगों ने जो कुछ सफलता प्राप्त की है अपने उद्योग से ही की है। जो उद्योग नहीं करता उसको ईश्वर भी सहारा नहीं देता। जो लोग हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहते हैं, इनको ईश्वर भी कहाँ से देगा? हर एक काम के लिए कुछ साधन चाहिये। जब तक उन साधनों को काम में न लाया जावे तब तक फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। कुएँ में बिना डोरी लोटा डाले पानी अपने आप नहीं निकल आता। यदि भाग्य है भी, तो बिना पुरुषार्थ के वह निष्फल रहेगा।

संसार में जितने बड़े आदमी हुए हैं और जिन्होंने इतिहास में अपना नाम छोड़ा है, उन्होंने साहस और उद्योग का सहारा लिया है। अर्जुन पुरुषार्थ और अभ्यास के बल से धनुर्धारियों में श्रेष्ठ बना। हनुमान अपने साहस के कारण ही महावीर कहला ब्राह्मण के बालक अपने साहस के आधार पर ही कालिनाग बहुत स्नेह करने लगा। विजय प्राप्त की। वीर शिवाजी ने अपनी र नेवले को अकेला छोड़ स्थापित किया। गुरुगोविन्दसिंहजी ने सर्प आया और लड़के की ही भारतवर्ष में अपना नाम अमर वद्र के कारण और कुछ बालक से

भाँति साहस निष्फल जाता है वहाँ पर हम किस्मत को भले ही दोष दे लें, पर इतना निश्चित है कि विना उद्योग किये सफलता प्राप्त नहीं होती। उद्योग ही सफलता का मार्ग है। जो इस मार्ग पर नहीं चलेगा वह किसी प्रकार लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए ठीक ही कहा है कि 'हिम्मत विन किस्मत नहीं।'

केवल व्यक्ति के विकास के लिए ही उद्योग आवश्यक नहीं है समाज और देश भी अपने विकास और उन्नति के लिए उद्योग किया करते हैं। संसार में जो महापुरुष आते हैं, उनका मुख्य कार्य यह होता है कि वे स्वयं तो उद्योग करते ही हैं मानव समाज को भी सामूहिक रूपेण उद्योग करने के लिए प्रेरित करते हैं। म० बुद्ध, महाराणा प्रताप, शिवाजी, ऋषि दयानन्द और म० गाँधी ने समाज और देश भर को नई दिशा में उद्योग करने को प्रेरित किया। भारत सामूहिक उद्योग से ही स्वतन्त्र हो सका है। तथा सामूहिक उद्योग से शिक्षित और चरित्रवान वन सकता है। यदि भारत अंग्रेजों के दमन के आगे हिम्मत छोड़ वैठता तो यह कैसे सफल होता ! इसी तरह यदि कोई सेना शत्रु के आक्रमण के आगे हिम्मत हार जाय तो फिर वह कभो विजय की आशा ही नहीं कर सकती। इसलिए व्यक्ति, समाज और देश सभी के लिए उद्योग आवश्यक है।

[बिना वि]चारे जो करे सो पाछे पछिताय

मनुष्य की बुद्धि विवे[क]

ही सव कुछ करता होता [है]। विचार ही उसकी विशेषता है। काम

ठहराता और न शास्त्र के उ[प] स्वाभाविक प्रवृत्ति के वश हो मशीन की

को स्वतन्त्र वनाया है। मनुष्य[] हैं। मनुष्य के लिए काम करने के

अपने इस जन्म के कर्मों से पि[]च और हानि-लाभ का विचार कर

उनमें एक को चुन सकता है और उस मार्ग पर चल कर सिद्धि प्राप्त कर सकता है। लेकिन जो मनुष्य विचार किये विना एक मार्ग का जल्दी से अनुसरण करता है, उसे प्रायः विफलता का सामना करना पड़ता है और तव वह पछताता है कि उसने जल्दी में यह काम क्यों किया। इसके अतिरिक्त मनुष्य का ज्ञान परिमित है और संसार वहुत वड़ा है। जिन मनुष्यों से हमें व्यवहार करना पड़ता है उनके वारे में प्रायः हम गलत निर्णय कर लेते हैं। भले को वुरा समझ लेते हैं और वुरे को भला। मनुष्य को समझने और परखने के लिए वहुत समय चाहिए। अनुभव की कसौटी पर कस कर ही मनुष्यों की परीक्षा होती है। विना पूरा अनुभव प्राप्त किये या विना अच्छी तरह विचार किये यदि कोई कार्य किया जाय तो उससे हानि होती है और पछताना पड़ता है। इसीलिए संस्कृत में कहा है कि 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' अर्थात् किसी काम को एकदम नहीं कर वैठना चाहिए।

संसार के कथा-साहित्य में इस सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले अनेकों उदाहरण मिलते हैं, किन्तु यहाँ पर एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। किसी शहर में देवशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। ईश्वर की कृपा से उसके एक पुत्र हुआ। उसके घर में एक नकुली (नेवली) पली हुई थी। उसी दिन नकुली ने भी वच्चा दिया। पुत्र के साथ-साथ एक ही दिन जन्म होने के कारण उस नेवले के वच्चे का ब्राह्मण-परिवार में वहुत आदर हो गया। नेवला ब्राह्मण के वालक के साथ नित्य खेला करता और वह उससे वहुत स्नेह करने लगा। एक दिन ब्राह्मण और ब्राह्मणी वालक और नेवले को अकेला छोड़ वाहर चले गये। इसी वीच एक विषैला सर्प आया और लड़के की ओर वढ़ने लगा। कुछ स्वाभाविक वैर के कारण और कुछ वालक से

स्नेह करने के कारण नेवले ने सर्प को मार डाला। ब्राह्मण के लौटने पर नेवला उसका स्वागत करने तथा उसे इस घटना का संवाद देने बाहर आया। नेवले का मुख खून से लथपथ देख कर ब्राह्मण को शंका हुई कि उसने बालक को काट खाया है। ब्राह्मण ने बिना और कुछ स विचारे पास से एक ईंट उठा कर नेवले पर पटक दी, जिससे वह वहीं पर म रगया। इसके बाद भीतर जा कर देखा तो बालक सोया पड़ा है और उसके पास एक काला साँप मरा पड़ा है। तब उसको सारा रहस्य मालूम हुआ और वह अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। इतने में ब्राह्मणी भी लौट आई और नेवले को मरा हुआ देख रोने लगी। इसी से कहा है कि जल्दी का काम शैतान का होता है। जो बिना विचारे जल्दी में काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना पड़ता है।

विज्ञान वरदान या अभिशाप ?

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को पूर्ण रूप से अपने वश में कर लिया है। जल, स्थल, आकाश कोई स्थान उसके लिए अगम्य नहीं रहा। सर्दी गर्मी का उस पर कोई असर नहीं हो सकता। पिछली डेढ़ शताब्दी में विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने इतनी उन्नति की है कि दुनिया का नक्शा ही बदल गया है। पुराने ज़माने के स्वप्न सत्य सिद्ध हो रहे हैं और अब शायद असम्भव कोई चीज़ रह ही नहीं गई।

विज्ञान क ासब से बड़ा वरदान यह समझना चाहिए कि उसने मनुष्य के मन से अंधविश्वास को दूर कर दिया है और उसके स्थान पर तर्क और खोज की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी है। वैज्ञानिक न किसी

बात पर सहसा विश्वास करता है और न किसी बात को किया असम्भव कह कर छोड़ देता है। वह प्रत्येक चीज़ का उचित व्यंग निर्धारण करने का यत्न करता है। उसका दृष्टिकोण उदार हो जाता है। प्रत्येक बात में वह नियम और शृंखला देखना चाहता है। इसी का यह परिणाम है कि नित्य नये से नये आविष्कार हो रहे हैं।

मानसिक उन्नति के सिवाय विज्ञान के अन्य वरदान इतने अधिक हैं कि हमारे जीवन का कोई क्षेत्र उनसे अछूता नहीं। इनमें से बहुतों का उपभोग करते करते हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि वे हमें प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुएँ प्रतीत होती हैं। रेलगाड़ी, मोटर-कार, विद्युतशक्ति, रेडियो, हवाई जहाज—ये सब विज्ञान की ही देन हैं और सब एक से एक बढ़ कर हैं।

रेलगाड़ी का आविष्कार बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इसके द्वारा यातायात बड़ा सुविधाजनक हो गया। समय की बड़ी बचत हो गई। महीनों का सफर दिनों में होने लगा। सहस्रों मनुष्य देश के एक छोर से दूसरे छोर तक कुछ ही समय में पहुँचने लगे। सहस्रों मन माल यहाँ से वहाँ आने जाने लगा। छोटे सफर के लिए मोटरकार का आविष्कार हुआ। उससे मनुष्य की सुख-सुविधा में और वृद्धि हुई। वायुयान के आविष्कार ने दिनों का सफर घंटों में कर दिया है। सुबह बंबई से चल कर अगले दिन सुबह लंडन पहुँचा जा सकता है। मनुष्य के लिए अब कोई स्थान अगम्य नहीं रहा। आकाश पर भी उसका निर्बाध अधिकार हो गया है। ५०० मील प्रतिघंटा चलनेवाले हवाई जहाज भी बन गये हैं। राकेट के आविष्कार से यूरी गागारिन ने पृथ्वी की पूरी परिक्रमा की तो तितोव ने १७ परिक्रमाएँ कर डालीं। और अब मनुष्य चन्द्र तक पहुँचने की योजनाएँ बना रहा है। यह सब विज्ञान की ही देन है।

मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति जितनी विद्युत शक्ति पर हो रही है उतनी और किसी से नहीं हुई। विद्युत शक्ति ने एक चमत्कार से संसार में कल्पवृक्ष उपस्थित कर दिया है। वटन दवाने की देर नहीं होती कि सारा शहर विजली की शुभ्र ज्योत्स्ना से दीप्त हो जाता है; 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। विजली केवल प्रकाश ही नहीं देती और भी कितनी तरह के सुख-सुविधा के सामान जुटाती है। मई जून की सख्त गर्मी में हम विजली के पंखे और कूलर से अपने कमरे विलकुल ठंढे रख सकते हैं। दिसम्वर जनवरी की सर्दी में हम हीटर द्वारा इच्छानुसार अपने कमरों को गर्म कर सकते हैं। विजली के द्वारा रेलगाड़ी के डव्वे और वड़े वड़े भवन भी अव वातानुकूल (Air conditioned) वनने लगे हैं। विजली की शक्ति से रेडियो द्वारा हम एक क्षण में अपनी आवाज़ हज़ारों मील दूर पहुँचा सकते हैं और घर वैठे लंडन और न्यूयार्क की खवरें और सीलोन के गाने सुन सकते हैं। टेलीफोन द्वारा हम दूर-देशस्थ मित्रों के साथ वड़ी सुगमता से वातचीत कर सकते हैं मानो वे हमारे कमरे में ही वैठे हों। आजकल लाखों और करोड़ों का व्यापार टैलिफोन के आधार पर ही चल रहा है। वेतार के तार से समुद्री जहाज तथा हवाई जहाज अपना सम्वन्ध दूर दूर तक वनाये रख सकते हैं और संकट की तथा अन्य सूचनाएँ उचित स्थानों पर पहुँचा सकते हैं। विद्युतशक्ति द्वारा केवल शव्द ही दूर तक नहीं पहुँचाया जाता, टैलिविज़न के आविष्कार से वक्ताओं के चित्र भी क्षण भर में दूर दूर तक पहुँच जाते हैं।

विज्ञान के द्वारा चिकित्साशास्त्र में भी वड़ी उन्नति हुई है। अणुवीक्षण यंत्र द्वारा खून, थूक तथा शरीर से निकले अन्य पदार्थों

के कीटाणुओं की जाँच करवा कर रोग का ठीक ठीक निर्णय किया जा सकता है। एक्स-रे के आविष्कार से शरीर के अंग-प्रत्यंग और अस्थियाँ साफ साफ नजर आ जाती हैं। इससे शल्य-चिकित्सा (चीरा-फाड़ी) को बहुत सहायता मिली है। अब वह अंधों की टटोल नहीं रही। रेडियम से नासूर आदि की चिकित्सा को बड़ी सहायता मिली है। आज कल रोगों की रोक-थाम के लिए प्रतिदिन नये से नये टीके और दवाइयों का आविष्कार हो रहा है। वैक्सीनेशन, इनऑकुलेशन तथा बी० सी० जी० के टीकों ने चेचक, हैजा, प्लेग और क्षयरोग आदि भयंकर बीमारियों का खतरा बहुत कम कर दिया है। अब ये रोग पहले की तरह महामारी नहीं समझे जाते।

विज्ञान के यंत्रों से मनुष्य के सभी कार्य बहुत सुगम हो गये हैं। हर कार्य के लिए मशीनें तैयार हो रही हैं। प्राचीन समय में जो सुख राजा महाराजाओं को बहुत धन खर्च करके प्राप्त होते थे आज वे साधारण स्थिति के लोगों को भी प्राप्त हैं। मनुष्य ने विज्ञान के द्वारा प्रकृति पर पूरी तरह से विजय पा ली है। इस तरह विज्ञान के वरदान असीमित हैं।

पर जैसे फूल के साथ काँटे भी होते हैं वैसे ही विज्ञान के जहाँ इतने वरदान हैं वहाँ कुछ अभिशाप भी हैं। एक ओर जहाँ विज्ञान ने मनुष्य के लिए सुख-समृद्धि के साधन जुटाये हैं वहाँ दूसरी ओर उसकी विनाशकारी शक्ति उतनी ही बढ़ा दी है। इस तरह युद्ध के समय विज्ञान अभिशाप के रूप में प्रकट होता है।

जहाजों को डुबाने के लिए विज्ञान ने पनडुब्बी तारपीडो और चुंबकीय माइनों का आविष्कार किया। हवाई जहाजों को गिराने के लिए हवाई तोपों (एंटी-एअरक्राफ्ट गनों) का। पहले युद्ध लाठी,

तलवार, वरछा, तीर कमान आदि से ही लड़े जाते थे। उसके वाद वंदूकें और तोपें वनीं। विज्ञान की उन्नति के साथ साथ युद्ध के अस्त्र अधिक भयंकर होते गये। मशीनगनें वनीं, टैंक वने, आकाश से वम गिराने के लिए हवाई जहाज वने, हवाई जहाजों को गिराने के लिए हवाई तोपें और फाइटर वने और अंत में सबसे भयंकर अस्त्र ऐटम वम वना। हिरोशिमा पर ऐटम वम के प्रयोग ने सारे संसार को दहला दिया और लोग अनुभव करने लगे कि विज्ञान वरदान ही नहीं अभिशाप भी है। वस्तुतः अव लड़ाई सैनिकों की लड़ाई नहीं रह गई अव वह वैज्ञानिकों की लड़ाई हो गई है। रूस और अमेरिका में आज अधिक से अधिक भयंकर और संहारकारी वम वनाने में होड़ सी लगी है। दोनों देशों के वैज्ञानिक और विज्ञानशालाएँ प्रतिदिन नये से नये परीक्षणों में दत्तचित्त हैं। सारांश यह कि यदि विज्ञान का उपयोग निर्माण के कार्यों में किया जाय तो वह वरदान है और यदि उसका उपयोग विनाश के कार्यों में किया जाय तो वह अभिशाप है।

सिनेमा या चल-चित्र

आज सिनेमा लोगों के मनोरंजन का सबसे प्रिय साधन है। गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, छोटे-वड़े, सभी का इससे मनोरंजन होता है। योरोप और अमेरिका की देखादेखी भारत में भी इसका प्रचार वहुत अधिक हो गया है।

सिनेमा का अविष्कार अमेरिका में एडीसन ने सन् १८९० में किया था। शुरू शुरू में मूक चल-चित्र ही वनते थे। भारत में पहला मूक चल-चित्र १९१३ में दिखाया गया। सन् १९२८ से वोलते चल-

चित्र दिखाये जाने लगे। भारत में १९३१ में पहला बोलता चल-चित्र 'आलमारा' बना। पिछले कुछ वर्षों में इस व्यवसाय ने भारत में बड़ी उन्नति की है। चल-चित्र बनाने में इस समय अमेरिका के बाद दूसरा नम्बर भारत का ही है। करोड़ों रुपये की पूँजी इस व्यवसाय में लगी हुई है।

भारत का ऐसा कोई भी शहर नहीं होगा जिसमें सिनेमाघर न हो। कोई नया शहर बसते ही उसमें सिनेमाघर बनना आवश्यक है। बड़े शहरों में सिनेमाघर लगातार बढ़ते जा रहे हैं। आज का नवयुवक भोजन करना बेशक भूल जाय, सिनेमा देखना नहीं भूल सकता। प्रमुख समाचार-पत्रों के कालम सिनेमा के विज्ञापनों से भरे रहते हैं। बाजारों, गली-कूचों, रेलवे-स्टेशनों—सभी स्थानों पर सिनेमा के विज्ञापन लगे रहते हैं। अधिकांश पत्रों के साप्ताहिक संस्करणों के कुछ कालम सिनेमा के समाचारों, उनकी कहानी तथा आलोचना के लिए सुरक्षित रहते हैं। पाठक उन्हें बड़ी उत्सुकता और चाव से पढ़ते हैं। कुछ पत्रिकाएँ विशेष रूप से सिनेमा सम्बन्धी ही निकलती हैं। इनकी खपत साहित्यिक पत्रिकाओं से अधिक है।

सिनेमा या चल-चित्र प्राचीन नाटकों का ही परिवर्तित या आधुनिक रूप है। नाटकों में अभिनेता रंगमंच पर आ कर अभिनय करते थे। अब अभिनेताओं को स्वयं रंगमंच पर आने की आवश्यकता नहीं। उनके द्वारा किये गये अभिनय की फिल्म ले कर उन्हें बिजली द्वारा चित्रपट पर दिखाया जाता है। नाटकों में रंगमंच पर सब तरह के दृश्य नहीं दिखाये जा सकते थे, पर सिनेमा में चित्रपट पर लहरें मारता समुद्र, आकाश में उड़ते हवाई जहाज़, भयंकर मारकाट और युद्ध, मूसलाधार वर्षा और तूफ़ान आदि के दृश्य भी दिखाये जा सकते हैं। सिनेमा की यह भी

विशेषता है कि एक ही खेल कितने ही स्थानों पर एक साथ दिखाया जा सकता है। अभिनेताओं का एक बार का अभिनय फिल्म में चित्रित हो कर सदा के लिए अमर हो जाता है। उसे आप जब और जहाँ चाहें देख-दिखा सकते हैं। सिनेमा द्वारा ऐसे स्थानों के दृश्य भी लोगों के लिए सुलभ हो गये हैं जिन्हें मनुष्य स्वयं अपनी आँखों से जा कर नहीं देख सकता।

सिनेमा का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। मनुष्य दिन भर के परिश्रम के बाद कुछ न कुछ मनोरंजन अवश्य चाहता है। उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सिनेमा सुलभ साधन कहा जा सकता है। इसीलिए वह इतना लोक-प्रिय हो रहा है।

सिनेमा ज्ञान-वर्धन और शिक्षा का भी उत्तम साधन हो सकता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा तैयार की गई डौक्यूमेंटरी फिल्में काफी ज्ञान-वर्धक होती हैं। इतिहास भूगोल तथा इसी तरह के अन्य विषयों की शिक्षा के लिए चल-चित्र या फिल्में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। विद्यार्थियों को हर स्थान पर ले जाना सम्भव नहीं होता, पर उन स्थानों के दृश्य चित्रपट पर बड़ी आसानी से दिखाये जा सकते हैं। भारत में अभी इस ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना रूस या योरोप के अन्य देशों में दिया जा रहा है।

सिनेमा प्रान्तीय सरकारों की आय का भी स्रोत है। प्रान्तीय सरकारों ने सिनेमा-शो पर काफी मनोरंजन-कर लगाया हुआ है। यदि लोगों से सीधा कर लिया जाता तो उन्हें काफी चुभता, पर सिनेमा के मनोरंजन के साथ यह कर उन्हें कष्टकर प्रतीत नहीं होता।

इस उद्योग में हमारे देश में काफी लोग लगे हुए हैं। बहुत लोगों को इस उद्योग से रोज़ी मिलती है। भारतीय फिल्मों की एशिया और

अफ्रीका के अन्य देशों में भी काफी माँग है। इसलिए इसके द्वारा हमारी राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है।

पर इन सब लाभों के होते हुए भी सिनेमा का जनता के चरित्र पर बड़ा बुरा असर पड़ रहा है। कारण यह है जितने चित्र आज कल बन रहे हैं वे प्रायः बहुत ही घटिया दर्जे के होते हैं। उनमें प्रेम का एक भोंडा-सा चित्र खींचा होता है। योरोप और अमेरिका की फिल्मों की नकल पर अभिनेत्रियों को अर्ध-नग्न अवस्था में प्रस्तुत कर दर्शकों की कामुक प्रवृत्ति को उभारने का ही इनमें यत्न किया जाता है। सौ में से शायद कोई एक ऐसा चित्र हो जिसे माता-पिता अपने किशोर लड़के-लड़कियों के साथ निस्संकोच देख सकें। ऐसे चित्रों का युवक-युवतियों के चरित्र पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। विद्यार्थियों के नैतिक पतन में इन चल-चित्रों का बहुत बड़ा हाथ है। सिनेमा के आकर्षण में कितने ही विद्यार्थी पढ़ाई के समय अपनी श्रेणियों से भी अनुपस्थित रहते हैं। पुस्तकों तथा फीस आदि के लिए माँ-बाप से मिले पैसे वे सिनेमा पर खर्च कर बैठते हैं। एक बार मुँह में लगी शराब की तरह उनका सिनेमा का शौक बढ़ता ही जाता है और उसके लिए कई बार वे घर से रुपये चुराने को भी बाधित होते हैं। इस प्रकार सिनेमा के आकर्षण ने कई युवकों को गढ़े में गिराया है और कई घरों को बरबाद किया है। बाजारों में लगे सिनेमा के अश्लील पोस्टरों की ओर तो श्री विनोबा का ध्यान गया था और उन्होंने उनके विरुद्ध आन्दोलन भी शुरू किया; पर उन फिल्मों के विरुद्ध, जिनके ये पोस्टर होते हैं कोई आन्दोलन शुरू नहीं हुआ। हमारा फिल्म सेंसर बोर्ड इतना उदार है या हमारा कानून इतना ढीला है कि सेंसर बोर्ड को ऐसे चित्रों में कोई आपत्ति नजर नहीं आती। असल में इन चित्रों के निर्माता, जो बड़े बड़े पूँजीपति होते हैं, बड़ी आसानी से सेंसर

वोर्डों से अपने चित्र पास करवा लेते हैं।

सिनेमा के वढ़ते शौक का लोगों की आर्थिक स्थिति पर भी काफी वोझ पड़ता है। मध्यम स्थिति के परिवार के लिए सप्ताह में एक वार सिनेमा देखना भी काफी वोझिल होता है। सिनेमा के आकर्षण को, जो शराव के नशे की तरह है, मनुष्य उस समय रोक नहीं सकता पर वाद में उसे उसका भार महसूस होता है। मजदूर-पेशा लोग, रिक्शा चलाने वाले तथा इसी तरह के अन्य लोग अपनी प्रति-दिन की गाढ़ी कमाई का वहुत सा भाग सिनेमा को भेंट कर देते हैं। उनके लिए सिनेमा शराव की तरह ही अभिशाप है। सिनेमा के इस काले पक्ष की ओर सम्भवतः अभी समाज का ध्यान नहीं गया।

पंचायत

हमारे देश में पंचायतों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना गाँवों का। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत प्रायः गाँवों में ही वँटा हुआ था। प्रत्येक गाँव अपने आप में पूर्ण था। वहाँ के निवासियों की सभी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जाती थीं। गाँव के अपने ही न्यायालय होते थे जिन्हें पंचायत कहते थे। पंचायत गाँव के प्रमुख व्यक्तियों की ऐसी संस्था होती थी जिसका निर्णय सभी को मान्य होता था। पंच परमेश्वर समझा जाता था। लोग छोटे वड़े सभी तरह के झगड़ों का फैसला पंचों से ही करवाते थे।

पर अंग्रेजों के शासन-काल में पंचायत-प्रथा समाप्त हो गई। अंग्रेजों की शासन-व्यवस्था में पंचायतों के अधिकार नगरों में स्थापित न्यायालयों के पास आ गये और पंचायत नाम मात्र को रह

गई। गाँवों का महत्त्व कम होता गया और उनके स्थान में बड़े बड़े नगर स्थापित होते गये। शासन का केन्द्र नगर हो गये और नये ढंग के न्यायालय स्थापित हुए। ग्रामीण लोग पहले बिना किसी विशेष खर्च के अपने झगड़ों का निपटारा पंचों द्वारा ही करवाते थे; पर अब उन्हें इस कार्य के लिए शहरों में आना पड़ता, बहुत सा रुपया वकील-मुख्त्यारों को भेंट करना पड़ता। इस तरह न्याय-व्यवस्था ग्रामीणों के लिए काफी कष्ट-साध्य और खर्चीली हो गई।

शिक्षा के प्रसार के साथ भारतीयों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति पैदा हुई और वे इस ओर प्रयत्नशील हुए। अंग्रेज़ सरकार भी समय समय पर थोड़े थोड़े अधिकार लोगों को देती रही। प्रारम्भिक अधिकारों में जिला बोर्डों, नगर बोर्डों और पंचायतों की स्थापना थी। १९०७ में सरकार ने विकेन्द्रीकरण-समिति के सुझावों को मान कर गाँवों में पुनः पंचायतों की स्थापना की। ग्राम-पंचायत ऐक्ट स्वीकार किया गया और सम्पूर्ण भारत में ग्राम-पंचायतें बनीं। समय समय पर इस ऐक्ट में सुधार होता रहा। गाँव वाले पंचों का चुनाव करते थे और पंच लोग अपने में से एक को सरपंच चुन लेते थे। एक-दो व्यक्तियों की नियुक्ति सरकार द्वारा भी होती थी। पंचायतों की देख-रेख जिलाधीश करता था पर इन पंचायतों के अधिकार बहुत सीमित थे। जात-पाँत, साधारण लेन-देन तथा मामूली झगड़ों का फैसला पंचों द्वारा होता था। पंचायतों पर गाँव के स्वास्थ्य, शान्ति, सुव्यवस्था एवं सुधार का भी भार था; पर इन कामों में पंचों का अधिक ध्यान न रहता था। पंच अधिकांश में अशिक्षित होते थे और पंचायतों की कार्यप्रणाली बहुत व्यवस्थित न होती थी। इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में पंचायतें यद्यपि स्थापित कर दी गईं पर इनका पूर्ण रूप से संगठन न हो सका।

महात्मा गाँधी गाँवों में पंचायतों के संगठन के विशेष पक्ष में थे। उनके विचार में प्राचीन पंचायत-पद्धति पुनरुज्जीवित किये विना ग्रामवासियों का कष्टों से छुटकारा नहीं हो सकता था। स्वतंत्रता के वाद हमारे विधान में पंचायतों की उन्नति और संगठन पर विशेष जोर दिया गया है। उसी के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में ग्राम-पंचायत-ऐक्ट पास हुए।

पंजाव में सन् १९५२ में ग्राम-पंचायत-ऐक्ट वना। उसके अनुसार प्रत्येक ग्राम में, यदि ग्राम वहुत छोटे हों तो दो तीन ग्राम मिला कर उनमें, ग्रामसभाएँ तथा पंचायतें स्थापित करना सरकार का कर्तव्य निश्चित हुआ। पहले पंचायतें कुछ गिने चुने गाँवों में ही थीं। नये पंचायत-ऐक्ट के अनुसार कम से कम ५०० की आवादी वाले गाँव में एक या एक से अधिक पंचायत वन सकती है। जहाँ ५०० से कम आवादी हो ऐसे २-३ गाँवों को मिला कर पंचायत वनाई जा सकती है। हर वयस्क (वालिग) स्त्री-पुरुष पंचायत के चुनाव में भाग लेने का अधिकारी है। पहले केवल पुरुष ही चुनाव में भाग ले सकते थे, स्त्रियाँ नहीं। गाँव का प्रत्येक वयस्क (वालिग) ग्रामसभा का सदस्य होता है। पंचायत उस ग्रामसभा की कार्य-कारिणी समिति का नाम है। पंचायत में ५ से ९ तक पंच होते हैं। पंच अपने में से एक सरपंच चुनते हैं। एक वार चुने गये पंचों का कार्य-काल ३ वर्ष है। ३ वर्ष वाद नया चुनाव होता है।

पंचायतों के प्रवन्ध-सम्वन्धी और न्याय-सम्वन्धी अधिकार वहुत वढ़ा दिये गये हैं। ग्राम का प्रायः पूरा प्रवन्ध उनके हाथ में आ गया है। पंचायत के मुख्य मुख्य कर्तव्य हैं—जनमार्ग वनवाना, लोगों के स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का प्रवन्ध, कृषि की उन्नति, पशु-पालन, शिक्षा का प्रवन्ध, व्यापार एवं उद्योगों की उन्नति, पुस्तकालयों एवं

वाचनालयों की स्थापना, खाद इकट्ठी करना, चरागाहों की व्यवस्था आदि। पंचायतों को कानूनी तौर पर टैक्स लगाने का अधिकार भी दिया गया है। पंचायतें आवश्यकता पड़ने प्रान्तीय सरकार की स्वीकृति से कर्ज भी ले सकती हैं।

दिसम्बर १९६० में पंजाब के गाँवों में पंचायतों के जो चुनाव हुए हैं उनके परिणाम-स्वरूप यहाँ १३४३९ पंचायतें बनी हैं, उनके कार्य-क्षेत्र में २१४६२ गाँव हैं। पंचों की संख्या ७१९५९ है। उनमें १८८८५ परिगणित जातियों के हैं और १३४२२ स्त्रियाँ हैं। पंचायतें प्रतिवर्ष प्रबन्धक कार्यों में लगभग २ करोड़ रुपये खर्च कर रही हैं।

पंचायतों के पिछले ८-९ वर्षों के कार्य का व्योरा देते हुए मुख्य मंत्री श्री प्रतापसिंह कैरों ने अपने एक भाषण में बताया था कि पंचायतों ने ३५५९ स्कूलों की इमारतें बनवाईं, ९४१ नये स्कूल जारी किये, ४३७६ पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित किये, ८००० रेडियो सेट लगवाये, ३२२२ पंचायत-घर बनवाये, १०७६८ मील लंबी सड़कें तैयार करवाईं तथा ४५६१०५ झगड़ों का निपटारा किया जिनमें से ६५ प्रतिशत झगड़ों में पंचायतें समझौता करवाने में सफल हुईं। गाँव वालों की कर्जदारी और दीवालियेपन का बहुत बड़ा कारण मुकदमेबाज़ी थी। मुकदमेबाज़ी में उनका समय भी बहुत नष्ट होता था। पंचायतों की स्थापना से जहाँ उन्हें न्याय बिना किसी विशेष खर्च के और बहुत जल्दी मिलने लगा वहाँ पंचायतें मुकदमेबाजी को कम करने की ओर भी प्रयत्नशील हैं। १९५३-५४ में पंचायतों में जहाँ ३१२१३ फौजदारी मुकदमें पेश हुए वहाँ १९५९-६० में यह संख्या ११३३४ रह गई। इसी तरह १९५३-५४ में जहाँ दीवानी मुकदमों की संख्या २४४३१ थी वहाँ १९५९-६० में यह संख्या १६७३१ रह गई।

पंचायती राज्य की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य यह है कि गाँव वाले स्वयं अपनी उन्नति करें या स्वयं अपना भविष्य बनायें। कोई भी सरकार कड़ी से कड़ी मेहनत से भी देहातियों की गरीबी, बीमारी या अशिक्षा को इतनी जल्दी दूर नहीं कह सकती जितना कि वे स्वयं अपनी समितियों अथवा पंचायतों द्वारा। इस तरह पंचायतों की स्थापना से एक नये युग का प्रारंभ हुआ है।

पंचशील

भारतवर्ष के प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल जी द्वारा प्रवर्तित 'पंचशील' आज की शान्ति-प्रिय मानवता के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ है। 'पंचशील' की घोषणा सर्वप्रथम चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाउ-एन-लाई और श्री जवाहरलाल नेहरू की परस्पर बात-चीत के परिणाम-स्वरूप जून १९५४ में नई दिल्ली में की गई थी। इसके पश्चात् संसार के अनेक देशों ने इसे मान्यता दे कर अपने वैदेशिक सम्बन्धों का आधार बनाया है और इस प्रकार विश्व में शान्ति का पक्ष सबल बनाने में सहायता की है।

पंचशील, दो संस्कृत शब्दों के मेल से बना है—पंच अर्थात् पाँच और शील अर्थात् उत्तम आचरण, सद्वृत्ति। इस प्रकार पंचशील का सामूहिक अर्थ हुआ "उत्तम आचरण के पाँच सिद्धान्त"।

'पंचशील' का इतिहास अढाई हज़ार वर्ष पुराना है। प्राचीन भारत में "पंचशील" बौद्ध धर्म की मूल भित्ति के रूप में प्रचलित हुआ था, जब कि महात्मा बुद्ध ने जीवन की आधार-भूत सचाई को समझ कर मनुष्य के मोक्ष का अपना अमर सिद्धान्त संसार के सामने रखा।

बौद्ध भिक्षुओं ने अपने स्वामी का अनुसरण करते हुए उत्तम आचरण के पाँच सिद्धान्त बना लिये जिनके आधार पर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता था। इन पाँच सिद्धान्तों को मानना सभी बौद्ध-धर्मावलम्बियों के लिए अनिवार्य था। बौद्ध पंचशील इस प्रकार था :—

(१) अहिंसा—किसी प्राणी को दुःख न पहुँचाना ;

(२) अस्तेय—चोरी आदि न करना ;

(३) ब्रह्मचर्य—संयम का जीवन व्यतीत करना ;

(४) सत्य—झूठ न बोलना; और,

(५) किसी मादक पदार्थ का सेवन न करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पंचशील' का प्रवर्त्तन सर्वप्रथम व्यक्तिगत जीवन के सुधार एवं उन्नयन के लिए हुआ। बौद्ध-धर्म के अपूर्व विस्तार एवं लोक-प्रियता के मूल में ये पाँच सिद्धान्त ही हैं।

इसके पश्चात् राष्ट्रीय स्तर पर 'पंचशील' का प्रतिपादन हिन्देशिया की पवित्र भूमि में जून १९४५ में हुआ। दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर जब दासता की शृंखलाओं को काट कर हिन्देशिया (Indonesia) एक स्वतन्त्र देश के रूप में प्रकट हुआ तो वहाँ के लोकप्रिय नेता डा० सुकर्ण ने अपने देश के आदर्शों को निम्नलिखित 'पंचशील' के रूप में घोषित किया—

(१) अपनी राष्ट्रीय एकता में विश्वास।

(२) मानवता में विश्वास।

(३) स्वतन्त्रता में विश्वास।

(४) सामाजिक न्याय में विश्वास।

(५) सर्वशक्तिमान् परमात्मा में विश्वास।

पाँच की संख्या वास्तव में बड़ी शुभ संख्या है। इस संख्या का

महत्त्व धार्मिक, आध्यात्मिक एवं भौतिक जगत् में महान् है। इस्लाम धर्म के पाँच मूलाधार हैं कुरात *, रोज़ा, नमाज़, खैरात और हज्ज (मक्के की यात्रा)। इसी प्रकार सिक्ख-धर्म के अनुयायी भी अपनी वेष-भूषा में पाँच बातों का ध्यान रखते हैं; केश, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण। मानव-शरीर भी पाँच भूतों से निर्मित है; पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। हाथ की पाँच उँगलियाँ हैं और महाभारत के विजयी पाण्डव भी संख्या में पाँच थे··· युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव। अपने इष्टदेव का प्रसाद भी हम पाँच पैसे, पाँच आने अथवा पाँच रुपये का ही लगाते हैं। हमारे जीवन में इस 'पाँच' का कितना महत्त्व है! इसलिए कोई आश्चर्य नहीं यदि हिन्देशिया के राष्ट्र-पति ने अपने राष्ट्रीय आदर्शों का नामकरण पंचशील किया।

बौद्धों के व्यक्तिगत जीवन और हिन्देशिया के राष्ट्रीय आदर्शों से ऊपर उठ कर नेहरू जी का पंचशील अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार का आधार बना है। शान्ति का आलोक फैलाने वाला यह पंचशील इस प्रकार है :—

(१) दूसरे देशों की प्रभुसत्ता एवं प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान;
(२) दूसरे देशों पर प्रथमाक्रमण का निषेध;
(३) दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना;
(४) एक दूसरे की स्वतन्त्रता के प्रति आदर और परस्पर समता का व्यवहार;
(५) शान्तिपूर्ण सहजीवन।

ये पाँच सिद्धान्त भविष्य में शान्ति का आधार बन कर जग-

* प्रातःकाल धार्मिक पुस्तक का पाठ।

मगायेंगे और इनकी ज्योति संसार का अंधकार चीर कर एक नई उषा का वाहन बनेगी। यह बात निर्विवाद है कि 'पंचशील' पर ही शान्ति-प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। इसीलिए दिन प्रतिदिन ये सिद्धान्त लोकप्रिय होते जा रहे हैं और संसार के अनेक देश—ब्रह्मा, नेपाल, हिन्देशिया, अफगानिस्तान, योगोस्लाविया, अरब, चीन, रूस आदि—इन सिद्धान्तों में अपनी आस्था घोषित कर चुके हैं।

इन सिद्धान्तों में भी अन्तिम सिद्धान्त—'शान्तिपूर्ण सहजीवन'—सबसे अधिक महत्त्व रखता है। बल्कि कहा जा सकता है कि ये पाँच सिद्धान्त ही 'सह-जीवन' अथवा 'सह-अस्तित्व' की मूल भित्ति हैं। आज तक संसार की महान शक्तियाँ अपनी अपनी शासन-पद्धति को ही सर्वश्रेष्ठ समझ कर दूसरे देशों की शासन-प्रणालियों को नष्ट करने के उद्देश्य से युद्ध की तैयारियाँ करती रही हैं। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि दोनों प्रकार की शासन-प्रणालियाँ एक दूसरे के साथ सहयोग करती हुई संसार में जीवित रह सकती हैं और शान्ति सम्भव हो सकती है। 'पंचशील' इसी दृष्टिकोण को पैदा करने चला है। सह-अस्तित्व पर ही विश्व-शान्ति का निर्माण हो सकता है और सह-जीवन के सिद्धान्त को मान कर ही मानवता विनाशकारी युद्धों की विभीपिकाओं से त्राण पा सकती है—

मैत्री-करुणा में कल्याण, विश्व-बन्धुता में ही त्राण।

'स्वयं जियो और दूसरों को जीने दो' पंचशील का मूल मन्त्र है जिसके आधार पर ही विश्वशान्ति सम्भव हो सकती है। आओ

आज नव-युग की उषा में, नव जगत् निर्माण कर लें!
प्राण-भीनी गीतियों से, शांति का आह्वान कर लें!

नव-जगत्-निर्माण की हमारी आकांक्षा पंचशील पर ही आधा-

रित है। क्योंकि नव-निर्माण शान्ति के वातावरण में ही सम्भव है और शान्ति निर्भर है पंचशील के प्रचार और प्रसार पर। संसार के भविष्य का निर्णय इसी बात से होगा कि हम इन स्वर्णिम सिद्धान्तों को अपनाते हैं अथवा अपनी रूढ़ि-जर्जर कूटनीतियों के चक्र में फँसे रहते हैं। इस समस्या पर हमें गम्भीर हो कर विचार करना है। हमें सोचना है कि क्या हम स्वार्थसाधना में रत रह कर शक्ति-संकलन की पुरातन नीतियों पर चलते हुए अपनी विजय-वाहिनी का निर्माण करें अथवा लोक-मंगल की कामनाओं से अनुप्राणित हो कर युगधर्म पंचशील का आह्वान। 'पावक पुनीत' में किया हुआ नरेन्द्र शर्मा का निम्नांकित निवेदन पंचशील की बड़ी ही समीचीन वंदना है :—

करो प्रगति-रथचक्र अग्रसर, बनो सुगम आलोक-लीक तुम !
मानव उर की देवोन्मुख, आकांक्षाओं के शुभ प्रतीक तुम !
हरो तमोमय कल्प, विश्व को—एक मुक्तिमय स्वर्ण प्रहर दो !
ऊर्ध्व संचरणशील शिखी, पावक पुनीत हे ! जीवन वर दो !

पंचशील निस्सन्देह वह पावन-आलोक है जो इस युद्ध-प्रपीड़ित संसार को जीवन-वरदान का सामर्थ्य रखता है। राजनेताओं का कर्तव्य है कि इसकी वन्दना करें। (श्री रोशनलाल सिंहल)

ग्राम-सुधार

भारत ग्रामों का देश है। इसमें सत्तर लाख ग्राम हैं। अधिक जनता ग्रामों में निवास करती है। उनकी दशा शोचनीय है। उन्हीं का उत्थान वास्तव में राष्ट्र का निर्माण है।

दासता युग में विदेशी शासकों का एक-मात्र लक्ष्य देश का धन

लूटना अथवा इस देश को अपनी व्यापारिक वस्तुओं की मण्डी बनाना था। उन्होंने ग्रामों में प्रचलित उस युग के उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया। नगरों की शोभा बढ़ाई। कल-कारखानें लगा कर हाथ के बने वस्त्रों तथा अन्य घरेलू उद्योगों को समाप्त कर दिया। विदेशी वस्तुओं के प्रचार और घरेलू उद्योगों के नष्ट हो जाने के कारण ग्रामीणों की आय का मुख्य मार्ग बन्द हो गया। अब उनके लिए दीनता और भुखमरी शेष रह गयी।

जन-संख्या की वृद्धि के साथ प्रति मनुष्य भूमि भी घटती गई। भूमिपतियों और शासकों के कर बढ़ते गये। उधर बनियों का सूद भी उनका रक्त चूसने लगा। ऐसी दशा में शिक्षा स्वच्छता वा चरित्र का किसे ध्यान रहता ? पतन पर पतन होता गया। ग्रामों के गठन, उनकी पंचायतें, उनके धर्मभाव, उनका परस्पर का प्यार एक एक कर के नष्ट होते गये।

इधर अंग्रेजी सेना से लौटे सैनिक शराब, चाय, जूआ, ऊपरी तड़क-भड़क, तथा झूठा अभिमान आदि बुराइयाँ अपने साथ ले आये। ग्रामीण उनसे इन बुराइयों की भी शिक्षा पाने लगे। साथ ही लड़ाई-झगड़े भी बढ़ने लगे। उनके निर्णय के लिए लोग कचहरियों की ओर बढ़ने लगे। मुक़दमेबाजी का एक नया रोग उन्हें आ लगा। वकील मुंशी सभी उनको चूसने लगे। विदेशी भी उन्हीं के धन से धनी होने लगे।

अतः भारत के ग्राम आज के युग में आर्थिक रूप से, सामाजिक रूप से तथा चारित्रिक रूप से बहुत पिछड़े हुए हैं। उन्हीं के निर्माण के लिए आज हमारे राष्ट्र के नेता पूरे यत्न से लगे हैं। तभी तो भिन्न भिन्न योजनाओं द्वारा ग्रामों में घरेलू हस्त-उद्योगों का प्रचार किया जा रहा

है। अम्बर चरखा वा दूसरे ऐसे साधन उनके लिए जुटाये जा रहे हैं। चादरें खेस दरियाँ तथा गलीचे बुनने में ग्रामीणों की रुचि आकर्षित की जा रही है। उन्हें आर्थिक सहायता भी इसके लिए दी जाती है। खद्दर भण्डार उनकी उत्पादित वस्तुओं को उनसे खरीद भी लेते हैं। कृषि में भी उन्हें सहायता देने के लिए नये नये सुझाव, उत्तम बीज तथा नये नये हल आदि जुटाये जा रहे हैं। उनको भूस्वामी बनाने के लिए जमींदारी-उन्मूलन अधिनियम भी बनाये गये हैं। चकबन्दी द्वारा उनकी भूमियों को एक स्थान पर इकट्ठा भी किया जा रहा है। उनकी उपज को उचित मूल्य पर बेचने की सुविधा का भी ध्यान रक्खा जा रहा है। इस प्रकार आज किसान आर्थिक रूप से उन्नति कर रहा है।

मुकदमेबाजी वा आपस के झगड़ों से उसकी रक्षा के लिये भी फिर से पंचायतें बनाई जा रही हैं। पंचायतों का चुनाव ये ग्रामीण आप करते हैं। पंच ग्राम की स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य की उन्नति के साथ साथ ग्रामीणों के आपस के झगड़े भी निपटाते हैं। वे कृषि-उत्सव रचा कर ग्रमीणों को कृषि-सम्बन्धी बातें समझाते हैं। वे ग्रामीणों में पशु-पालन की रुचि बढ़ाते हैं। उत्तम पशुओं के पालन पर पुरस्कार देते हैं। रेडियो तथा सिनेमा-फिल्मों द्वारा किसानों को संसार का परिचय देते हैं। बच्चों और युवकों की शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। वे कई स्थानों पर रात्रि स्कूल खोल कर बड़ों को भी साधारण भाषा-ज्ञान कराने के यत्न करते हैं।

इनसे आज का ग्रामीण कुछ जागा तो है। उसे चुनावों में अपनी शक्ति का भी कुछ ज्ञान हुआ है। सहकारी समितियों गठन से उसे बनिये से भी कुछ छुटकारा मिला है। भिन्न भिन्न साधनों से उसका रहन-सहन भी कुछ बदला है। 'राजनीति' तथा जनतन्त्र का अर्थ भी वह जान

गया है। कृषि में भी उसकी योग्यता पहले से अधिक है। उसकी उपज पहले से अधिक होती है। अनाज की कीमतों के बढ़ जाने के कारण उसकी आय भी अच्छी हो गई है। घरेलू उद्योगों में भी उसकी रुचि बढ़ रही है। फिर भी ग्रामीणों की वास्तविक उन्नति अभी नहीं हो रही।

वास्तविक उन्नति का सम्बन्ध एक-मात्र धन भूमि और उपज से नहीं है, उसका घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्ति के चरित्र से है। ग्रामीण अब भी चरित्रहीन हैं। वहाँ अपराधों की संख्या पहले से अधिक है। चोरी, डाका, दुराचार, शराबखोरी तथा दूसरे नीच कर्म वहाँ अब और भी बढ़ते जा रहे हैं। इनके साथ ही मुकदमेबाजी भी बढ़ रही है। कचहरियों में ७०-८० प्रतिशत मुकदमें ग्रामीणों के ही होते हैं। उनका बहुत सा रुपया कचहरियों में ही नष्ट होता है। ग्रामीणों के लिए कचहरियों का द्वार बिलकुल बंद हो जाना चाहिए। उनके लिए कानून बन जाना चाहिए कि सब झगड़े पंचायत द्वारा निपटावें। पर यह तभी हो सकता है जब पंच अपने कर्तव्यों को समझें और न्यायानुकूल फैसला करें; गाँव वालों का उनमें विश्वास जम जाय।

शिक्षा के प्रचार के लिए यद्यपि काफी यत्न किया जा रहा है पर अभी वह उतना नहीं हो पाया जितना ज़रूरी है। हर गाँव में कम से कम एक हाई स्कूल तो होना ही चाहिए। इस ओर सरकार काफी ध्यान दे रही है; और आशा है अगले कुछ वर्षों में इधर काफी प्रगति हो जायगी।

सबसे अधिक आवश्यकता है गाँवों में स्वास्थ्य और सफाई की ओर ध्यान देने की। गाँवों में जा कर सबसे अधिक जो बात खटकती है वह है वहाँ की गंदगी। इसे तब तक दूर भी नहीं किया जा सकता जब तक गाँव वाले स्वयं इधर ध्यान न दें। असल में वर्षों से ऐसी ही

हालत में रहते हुए वे कुछ उसके आदी से हो गये हैं और उन्हें स्वयं शायद वह खटकती भी नहीं। पर जब बाहर का कोई आदमी वहाँ जाता है तो उसे सबसे अधिक वहाँ की गंदगी ही खटकती है। शिक्षा के प्रसार और प्रचार के साथ तथा पंचायतों के ठीक ढंग से कार्य करने लग जाने पर ही इधर विशेष ध्यान दिया जा सकेगा।

गाँवों में सरकारी अस्पतालों और डाक्टरों का अभाव भी काफी खटकता है। डाक्टरों की देश में वैसे भी कमी है और गाँव में जाना तो वे पसन्द ही नहीं करते। अतः गाँवों में सरकारी अस्पतालों की विशेष आवश्यकता है।

स्वाधीनता के बाद से हमारी सरकार गाँवों की हालत सुधारने में विशेष प्रयत्नशील है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, पिछले कुछ वर्षों में उनमें काफी सुधार हुए हैं और आशा है भविष्य में भी यह क्रम इसी तरह जारी रहेगा।

हिन्दू कोड बिल

भारतवर्ष की हिन्दू-स्मृतियों में सामाजिक प्रश्नों पर भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार हिन्दू-धर्म के आचार्य हिन्दू-समाज के नियमों में भी परिवर्तन करते रहे हैं। आज भी देश और समाज की परिस्थितियाँ बदल गई हैं। इसलिए यदि उनमें कोई परिवर्तन हो, तो इसी आधार पर उसका विरोध नहीं करना चाहिये कि हिन्दू-धर्म की व्यवस्था को बदला गया है।

न जाने कितनी सदियों से हिन्दू-समाज में पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करता आया है। स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर

दिया गया। पति की जायदाद से वह लाभ नहीं उठा सकती। बचपन में ही विधवा हो जाने पर उसे आजन्म संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पति चाहे कितने विवाह कर ले वह चूँ नहीं कर सकती। पति उस पर चाहे कितने अत्याचार करे, वह एक शब्द नहीं बोल सकती। पति चाहे नपुंसक कोढ़ी या बदमाश हो, स्त्री को अपना जन्म उसी की सेवा में बिता देना पड़ता है।

इन्हीं सब अत्याचारों को देख कर कुछ समय से सुधारकों के हृदय में हिन्दू-समाज के नियमों में परिवर्तन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को बन्द कराने की चेष्टा की और ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह को कानूनन जायज़ ठहरवा दिया। लेकिन इनसे स्त्रियों की समस्या हल नहीं हुई। पिछले ५० साल में समय-समय पर नये सुधारों के लिए आवाज़ उठती रही। शिक्षित स्त्रियों ने इस आन्दोलन में विशेष भाग लिया। उनके इन सब प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप हिन्दू कोड बिल पास किया गया।

हिन्दू कोड बिल में बहुत सी धाराएँ हैं, लेकिन मुख्य रूप से उसमें निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं :—

(१) स्त्री या पुरुष एक समय में एक ही विवाह कर सकेंगे। किसी स्त्री या पुरुष को यह अधिकार नहीं होगा कि वह बहु-विवाह कर सके।

(२) एक गोत्र में भी विवाह हो सकता है। सिर्फ माता-पिता की ५-७ पीढ़ियाँ छोड़नी पड़ेंगी।

(३) स्त्री या पुरुष एक दूसरे को कुछ परिस्थितियों में तलाक दे सकेंगे। यदि दोनों में से कोई विवाह के समय नपुंसक या वंध्या हो, दुश्चरित्र हो, कोढ़ आदि असाध्य रोगों का

शिकार हो अथवा बहुत बरसों तक लापता रहे; ऐसी हालत में स्त्री या पुरुष को एक दूसरे को तलाक देने का अधिकार होगा।

(४) पिता की सम्पत्ति में से लड़कों की भाँति लड़कियों को भी उत्तराधिकार में भाग मिलेगा। विधवा को भी पति की सम्पत्ति में अधिकार रहेगा।

ये चार मुख्य बातें हैं जो हिन्दू कोड बिल में रखी गई हैं। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी स्त्रियों और बहुत से सुधारवादी पुरुषों को इस बिल से संतोष हुआ है। उनकी यह धारणा है कि इससे स्त्रियों की स्थिति बहुत सुधर जायगी। अब कोई आदमी एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करके प्रथम स्त्री के जीवन को नष्ट नहीं कर सकेगा। आखिर लड़की भी तो पिता की संतान है, उसका भाई की तरह पिता की सम्पत्ति में भाग लेने का समान अधिकार है। इस तरह सम्पत्ति पा कर वह पति कुल में इतनी दीन और पराधीन नहीं रहेगी। पति के अत्याचारी, बदमाश, नपुंसक और कोढ़ आदि रोगों से युक्त रहने पर स्त्री अपने जीवन को नरकमय बनने से बचा सकेगी और दूसरा विवाह करके आनन्द और शान्ति से अपना जीवन व्यतीत कर सकेगी।

बिल के विरोधियों की संख्या भी कम नहीं है। सिक्खों की ओर से विशेष रूप से इसका विरोध हो रहा है। पंजाब-विधान-सभा ने भी पिता की सम्पत्ति में लड़कियों को समानाधिकार मिलने की धारा के विरोध में अपना मत प्रकट किया है। विरोधियों में जहाँ प्राचीन रूढ़िवादी हैं, वहाँ शिक्षित सुधारक भी कम नहीं हैं। उनका खयाल है कि एक-पत्नी विवाह और गोत्र में विवाह की अनुमति तो आवश्यक है, शेष दोनों भाग हानिकारक हैं। यदि लड़की भी भाइयों से भाग लेने

लगेगी, तो भाई-वहन में परस्पर स्नेह नहीं रहेगा, उनमें भी मुकदमेवाजी छिड़ जायेगी। अचल पैत्रिक सम्पत्ति विशेष कर जमीन अव और भी छोटे टुकड़ों में विभाजित हुआ करेगी। फिर इससे आर्थिक लाभ भी नहीं रहेगा, क्योंकि यदि वह पिता से कुछ लेगी, तो उसकी ननद भी उसके पतिकुल से कुछ ले जायगी। आजकल विवाह के लिए जैसे दहेज पर ध्यान दिया जाता है, वैसे अव यह भी देखा जायगा कि ऐसी लड़की ली जाय, जिसके भाई-वहन कम हों और पिता की जायदाद काफी हो। तलाक का अधिकार विवाह की आध्यात्मिकता और पवित्रता को नष्ट कर देगा, तथा वाल-वच्चों के पालन-पोषण की समस्या विकट हो जायगी। जो पुरुष दूसरा विवाह करना चाहेगा वह अपनी पहली स्त्री को तलाक देने के लिए कचहरी में इस आशय की पाँच-सात झूठी गवाहियाँ भुगता देगा कि वह वदचलन है। आज किसी पुरुष को दूसरा विवाह करने पर पहली स्त्री के भरण-पोषण का खर्च देना पड़ता है। कचहरी द्वारा वदचलन ठहरा कर तलाक दी गई स्त्री से कोई दूसरा पुरुष विवाह न करेगा तथा पहले पति से भरण-पोषण का खर्च भी उसे न मिलेगा। तलाक का विधान होना चाहिए, पर एक दूसरे पर कीचड़ उछाल कर नहीं। कीचड़ उछालना यूरोप की नकल है। आचार्य चाणक्य का विधान था—'परस्परं द्वेषात् मोक्षः।' अर्थात् जव पति-पत्नी की आपस में न वने तो तलाक हो जाना चाहिए। हमें अपने पूर्वजों के विधान पर ही चलना चाहिए। वस्तुतः हिन्दू कोड विल दोहरी तलवार है, जो स्त्री-पुरुष दोनों पर समानरूपेण प्रहार करती है।

कुछ विवेचनात्मक निबन्धों के खाके

सत्यभाषण

जो बात जैसी देखी सुनी अथवा समझी हो, उसको उसी प्रकार वाणी द्वारा प्रकट कर देने का नाम सत्यभाषण है। मनुष्य मन वचन कर्म से सत्यवादी हो। जो मन में सोचे वही वाणी से कहे, वही उसकी क्रिया में हो। सच्चा मनुष्य वही है जो भीतर-बाहर एक-सा हो। सत्य सब से बड़ा गुण है और सब गुणों का आधार। जिसमें सत्य हो उसमें निर्भयता आदि सब गुण आ जाते हैं। साँच को आँच नहीं। सत्य मनुष्य को सरल, निर्मल, दूसरों को हानि न पहुँचाने वाला तथा सदाचारी बना देने वाला है।

सत्य पर डटे रहना, सचाई का व्यवहार करना, प्रत्येक दुनियादार आदमी के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि साधु या वैरागी के लिए। कुछ लोग छोटे स्वार्थों, थोड़े लाभों और जल्दी सफलता के लोभ में झूठ से काम ले लेते हैं। सोचते हैं फिर झूठ न बोलेंगे। पर धीरे-धीरे आदत ही पड़ जाती है। असत्य कई बार बड़ा लुभावना होता है; सफलता का प्रलोभन दिखाता है। इसके विपरीत सच्चे आदमी को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं, जैसे हरिश्चन्द्र आदि को; पर अन्त में सत्य की ही विजय होती है; "सत्यमेव जयते नानृतम्"। सच्चे आदमी का सब विश्वास करते हैं पर झूठे का अविश्वास। निकटतम संबंधी भी झूठे व्यक्ति पर संदेह करने लगते हैं। किसी बात को बढ़ा कर कहना, अथवा अपने लाभ के लिए छिपाना या गोलमोल कहना भी

झूठ है। दुकान पर बैठ कर झूठ बोल कर दुगनी कीमत वसूल करना या झूठी गवाही देना पाप नहीं समझा जाता। 'या बेईमानी तेरा आसरा' का सिद्धांत जब तक समाज में प्रचलित है तब तक सब कुरीतियाँ हैं, एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक कुकृत्य करने पड़ते हैं।

प्राचीन काल में सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सत्य के अवतार युधिष्ठिर, इस युग में महात्मा गाँधी।

आत्मगौरव

मनुष्य में आत्मगौरव या आत्मसम्मान का भाव सबसे अधिक आवश्यक। जो अपना सम्मान स्वयं करता है दूसरे आदमी भी उसका आदर अवश्य करेंगे।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
यह नर नहीं नर-पशु निरा है, और मृतक समान है।

आत्मगौरव या आत्म-प्रतिष्ठा का अर्थ अभिमान नहीं। अभिमान सब से बड़ा शत्रु है। पर आत्म-सम्मान का अर्थ है विनयी और नम्र होते हुए भी अपनी इज़्ज़त का ध्यान रखना। जिसको आत्मप्रतिष्ठा का ध्यान है वह कभी नीच कर्म न कर सकेगा, आत्मप्रतिष्ठा के महत्त्व को समझने वाला ही जीवन में सफल हो सकता है। व्यापारी राजनीतिज्ञ आदि सभी के लिए आत्मसम्मान आवश्यक। इसी से देश तथा जाति का गौरव बढ़ता है।

जिनमें आत्मसम्मान नहीं है वे थोड़े से लाभ के लिए दूसरों के तलुए चाटते फिरते हैं, गाली तक सहते हैं।

कविवर रहीम के आदर्श वाक्य—

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून।
रहिमन मोहि न सुहाय, अभी पिआवत मान बिनु।
जो विष देइ बुलाय, मानसहित मरिबो भलो॥

शिष्टाचार

शिष्टाचार का अर्थ है सद्व्यवहार, भले आदमियों का-सा बरताव। शिष्टाचार बहुत बड़ा गुण। शिष्टाचार आदमी के कुल चरित्र शिक्षा-दीक्षा की कसौटी। शिष्ट विनयशील व्यक्ति से सब प्रेम करते हैं। शिष्टाचार बड़े-बड़े कामों में ही नहीं, छोटे कामों में भी।

घर शिष्टाचार सीखने का विद्यालय। बड़ों का आदर। घर में गंदगी न फैलाना। घर में आये अतिथि का सम्मान। बीमार की सेवा-शुश्रूषा।

विद्यालय में जब मुख्याध्यापक या कोई दूसरे अध्यापक आवें तो उठ कर उनका स्वागत करना। विद्यालय की वस्तुओं को गंदा न करना। आँगन या कमरे में इधर-उधर कागज़ न फेंकना। वाचनालय या पुस्तकालय में चुपचाप पढ़ना। खेल के मैदान में भी शिष्टाचार आवश्यक।

सड़क पर फलों के छिलके न डालना। अपने घर बैठे बैठे ऊपर से बाहर बाजार में कूड़ा न फेंकना। सड़क पर पेशाब या पाखाना न करना और न हर स्थान पर थूकना। राह चलती स्त्रियों की ओर न ताकना अपितु उनका आदर करना। यात्रा में टिकट लेते समय धक्का-मुकी न करना। रेल के डिब्बे में बैठे आदमियों की सुविधा का खयाल रखना।

खाते समय मुँह में इतना बड़ा ग्रास न भरना कि मुँह चलाना कठिन हो जाय। भोजन केवल एक—दाहिने—हाथ से खाना और

भोजन से मुँह हाथ कपड़े न लपेट लेना। पहले भोजन पाने के लिए न चिल्लाना। व्यर्थ जूठा न छोड़ना। खाते समय पंक्ति से न उठना और जब दूसरे खा चुके हों तो स्वयं भी खाना बंद कर देना।

सभा में या दूसरे के घर बिना बुलाये न जाना। ऐसी जगह न बैठना जहाँ से उठना पड़े। किसी के मकान में प्रविष्ट होने से पहले आवाज़ देना या दरवाज़ा खटखटाना। किसी की गुप्त बात सुनने का प्रयत्न न करना। किसी के पत्र आदि को चोरी से न पढ़ना। पुस्तक के पन्ने उलटते समय थूक न लगाना। नाक मुँह को साफ रखना तथा बाहर जाते समय कपड़ों का ध्यान रखना।

नागरिक के अधिकार और कर्तव्य

नागरिक शब्द का अर्थ है नगर का रहने वाला। परन्तु आज-कल एक राष्ट्र के प्रत्येक निवासी को चाहे वह नगर में रहता हो अथवा ग्राम में, उस राष्ट्र का नागरिक कहा जाता है।

नागरिक के अधिकार—राष्ट्र उसके जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करे, उसे अपनी राय अपने विश्वासों एवं अपने मज़हब की स्वतंत्रता हो, राष्ट्र में जहाँ चाहे जावे या बसे, उद्योग और व्यापार की स्वतंत्रता हो, उसके वैयक्तिक जीवन तथा पत्र-व्यापार में किसी का दखल न हो, उसे मत देने का तथा शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हो और कानून की दृष्टि से उसे वे सब अधिकार समान रूप से मिले हों जो किसी अन्य नागरिक को प्राप्त हों, जात-पात या अन्य किसी कारण-वश वह किसी अधिकार से वंचित न हो। भारत के संविधान में सब नागरिकों को ये मौलिक अधिकार दिये गये हैं।

इनके विपरीत प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र के

कार्यों में सहयोग दे और नियमों का पालन करे, राष्ट्र के आर्थिक बोझ को उठावे, यदि उसपर अन्य नागरिक किसी पद का भार डालें तो उसे उठाये, अपने मत देने के अधिकार का भली-भाँति प्रयोग करे, शिक्षा प्राप्त करे तथा कार्य-कुशल और उद्यमी बने। पारस्परिक सहयोग, नियंत्रण, निर्वाचित व्यक्तियों की आज्ञा के पालन, तथा अपने से बड़ों और सहयोगियों पर विश्वास के आधार पर ही नागरिकता का महल बनता है। नागरिकों से परिवार, परिवार से ग्राम या शहर और ग्राम या शहर से देश बनता है। अतएव देश का अभ्युदय, देश की स्वतंत्रता इस बात पर निर्भर है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपने नागरिक अधिकारों और कर्त्तव्यों को समझे और तदनुसार जीवन-निर्वाह कर अच्छा नागरिक बनने का प्रयत्न करे। हमारी शिक्षा का यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम अच्छे नागरिक बनें। सच्चा नागरिक ही वास्तविक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति है।

धन का सदुपयोग

धन संसार की बड़ी शक्ति है। संसार के जितने भले कर्म हैं, वे धन की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए धन त्याज्य नहीं; उसका सदुपयोग होना चाहिए।

दान उपभोग और नाश धन की तीन गतियाँ हैं; जो न देता है और न खाता है, उसका धन स्वयं ही नष्ट हो जाता है। अतः धन का सदुपयोग दान देने में है। दान देते समय दान-पात्र का ध्यान रखना चाहिए। शिक्षा आदि के कार्यों पर खर्च करना या अनाथों विधवाओं और असहायों की सहायता के लिए देना धन का सदुपयोग कहा जा सकता है।

"दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" गीता के इस वाक्य का तात्पर्य यही है कि गरीबों को दान देना चाहिए, ऐश्वर्यशाली को नहीं। कुपात्र को दिया दान धन का दुरुपयोग है। देश के उन व्यवसायों में धन लगाना जिनमें लाभ की आशा कम हो, जिनसे देश के कला-कौशल और व्यवसाय की उन्नति हो, अनेक वेरोज़गारों को रोज़गार मिलता हो, धन का सब से अच्छा उपयोग है।

उचित रीति से जो धन अपने ऊपर खर्च किया जाता है, उसका फल दान से कम नहीं, वह भी सदुपयोग है। स्वच्छ कपड़े, हवादार मकान, स्वास्थ्य और मन-बहलाव के लिए खेल-कूद, अनुभव-प्राप्ति के लिए भ्रमण और यात्रा, बालकों की शिक्षा, ये सब मानव-जीवन के लिए आवश्यक हैं। इन पर खर्च किया गया धन सदुपयोग ही है। व्यसन आदि पर खर्च करना दुरुपयोग है।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

जिस व्यक्ति को भविष्य में महत्त्वशाली बनना होता है, उसके वैसा होने के लक्षण बचपन में ही दिखाई देने लगते हैं। इसी अर्थ में दूसरी उक्ति है 'पूत के पाँव पालने में पहचाने जाते हैं।' इतिहास के पन्ने इन उक्तियों का पग-पग पर समर्थन करते हैं। हर एक महापुरुष का जीवन इस बात का पोषक है। बचपन से ही भगवान बुद्ध की सांसारिक विषयों में उदासीनता प्रकट होने लगी थी। नवयुवक चंद्रगुप्त को देख कर सिकन्दर महान् ने भविष्यवाणी की थी कि वह एक दिन भारत का सम्राट् होगा। तक्षशिला और उज्जैन का विद्रोह दमन कर युवावस्था में ही सम्राट् अशोक ने अपनी भावी शासन-शक्ति का परिचय दे दिया था। मुगल-साम्राज्य की नींव डालने वाले बाबर का

शौर्य वचपन में ही दिखाई देने लगा था। वचपन में ही वीजापुर के दरवार में सुलतान को सलाम न कर शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया था। १९ वर्ष की अवस्था में ही होनहार रणजीतसिंह ने अव्दाली के पुत्र की आँख को अपनी ओर खींच लिया था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही दोहा वना कर भारतेन्दु ने अपनी भावी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन किया था।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अव

समय सव से वड़ा धन है। गुम हुआ धन मिल जाता है, पर गुज़रा समय नहीं मिलता, अतः एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाना चाहिए। जो काम करना हो उसी समय कर लेना चाहिए, फिर पर नहीं टालना चालिए।

मानव-जीवन क्षणभंगुर है, दमभर का भी विश्वास नहीं। पता नहीं किस क्षण जीवन-लीला समाप्त हो जाय। अतः किसी काम को कल पर टालना उचित नहीं। जो आदमी टालता रहता है उसका काम कभी पूरा नहीं होता। अतएव कहावत है 'कल कभी नहीं आता'। इसी को महाकवि कवीर ने इस प्रकार कहा है—

'काल करै सो आज कर आज करै सो अव।'

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना

लंकापति रावण जव अपनी पत्नी और अपने भाई के सदुपदेश को ठुकरा रहा था, और देवी सीता को रामचन्द्रजी के पास वापिस भेजने को तैयार न था, तव महाकवि तुलसीदास ने विभीषण-द्वारा

रावण को उपदेश दिलाते हुए ये वचन कहलाये हैं—सुमति (अच्छी बुद्धि, अच्छे विचार) और कुमति (बुरी बुद्धि, बुरे विचार) प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में हैं। जहाँ सुमति का जोर होता है वहाँ संपत्ति है, जहाँ कुमति प्रबल होती है, वहाँ अन्त में विपत्ति निश्चित है।

इस उक्ति में अनूठा सार है। जब मनुष्य में कुमति होती है, तब उसे सब उपदेश कड़वे लगते हैं; वह किसी की नहीं सुनता; अन्त में उसका पतन होता है। पर जहाँ सुमति होती है, भाई-भाई में कलह नहीं होता, मन में सद्विचार होते हैं, वहाँ संपत्ति है। इतिहास इसका प्रबल प्रमाण है। रावण का पतन कुमति से हुआ। कौरवों का नाश और पांडवों का अभ्युदय इसी कुमति और सुमति से हुआ। अन्य अनेक साम्राज्यों की समृद्धि और पतन के ये ही कारण थे। साधारण गृहस्थों में भी हम यही देखते हैं। मनुष्य में जब तक सुमति होती है, तब तक उसकी उन्नति होती है, वह संपत्ति पाता है, पर संपत्ति पाने पर मद के मारे जब उसकी अन्दर की आँखें बन्द हो जाती हैं तब उसका पतन होने लगता है। जिसे हम भाग्यचक्र कहते हैं, वह सुमति और कुमति के कारण ही चलता है।

युद्ध से हानि-लाभ

आदिकाल से युद्ध होते आये हैं—समय के साथ-साथ युद्ध के रूपों में परिवर्तन—आजकाल के युद्ध भयंकरतम हो गये हैं—टैंक, हवाई जहाज, टारपीडो, परमाणु बम से भयंकर संहार—सभ्यता और शस्त्रा की उन्नति के बावजूद मानव पिशाच बन गया है—एक क्षण में ही नगरों के नगर ध्वंस कर देता है।

युद्ध के मूल कारण—मनुष्य की स्वार्थ प्रवृत्ति और अपने बढ़ने

की दुर्दमनीय इच्छा—लोभ और क्रोध विवेक को नष्ट कर देते हैं।

समय समय पर महान आत्माओं का अवतरण—क्रोध द्वेष और हिंसा के दमन का उपदेश—महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा और गाँधी जी की शिक्षाएँ—इन शिक्षाओं का मानव पर अस्थायी प्रभाव।

अनेक अवस्थाओं पर युद्ध अवश्यंभावी—आक्रमणकारी विदेशी शत्रुओं से—अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए—युद्ध से वीरता और जीवन का संचार—युद्धहीन जीवन देशों को निश्चेष्ट और आलसी कर देता है—संघर्ष जीवन की कठोर आवश्यकता।

किन्तु युद्ध से भयंकर हानियाँ भी होती हैं—लाखों स्त्रियाँ और बच्चे अनाथ हो जाते हैं—अरबों रुपये की सम्पत्ति का नाश—मानव की सब सत्प्रवृत्तियों का नाश हो कर उसका दानव बन जाना—लाखों वीरों की हत्या से देशों में अनाचार की अधिकता—व्यापार, खेती का नाश—भुखमरी—बेईमानी—चारित्रिक हीनता आदि दोषों का प्रसार।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं

यह कहावत पूर्णतया सत्य है—पराधीनता मृत्यु और स्वाधीनता जीवन—पराधीनता जीवन के सद्गुणों की समाप्ति और दुर्गुणों का प्रसार—पराधीन राष्ट्र अपनी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, भाषा, इतिहास, आत्माभिमान सब कुछ नष्ट कर देता है। चौबीसों घंटे भय से दुर्बलता—जीवन के सब सुख नष्ट हो जाते हैं—मानसिक विकास रुक जाता है।

प्रत्येक प्राणी स्वाधीनता चाहता है—सचमुच स्वाधीनता स्वर्ग है—स्वाधीनता के लिए सभी देशों में वीरों द्वारा अमर बलिदान—भारत में भी स्वाधीनता संग्राम—१५ अगस्त १९४७ को भारत की स्वाधीनता।

स्वाधीनता के साथ हमारी जिम्मेवारियाँ भी बढ़ गई हैं—राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि के लिए स्वार्थ-त्याग का आदर्श आवश्यक है।

हिन्दू-समाज में स्त्रियों का स्थान

बहुत प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान स्वाधीन थीं। वैदिक काल में स्त्रियों का पूर्ण आदर—वेद की शिक्षा स्त्रियाँ भी लेती थीं—मैत्रेयी, गार्गी, कात्यायनी आदि के उदाहरण—दशरथ के साथ युद्ध में कैकेयी का जाना—स्वयंवर की प्रथा—भारत के मध्ययुग में भी स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी—बौद्ध संघ में स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बनती थीं।

बाद में शनैः शनैः स्त्रियों की स्थिति गिरती गई—परदा, बाल-विवाह, अशिक्षा आदि का प्रचार—स्त्रियाँ घरों में बन्द—दहेज की प्रथा के साथ-साथ लड़कियों के प्रति घृणा—अनेक स्थानों पर स्त्रियों को जन्म से मारने की प्रथा—स्त्रियों पर बलात् वैधव्य का थोपा जाना—पुरुष के कई विवाह—स्त्रियों की स्थिति दीन से दीनतर होती गई।

आर्यसमाज और नई सभ्यता तथा नई शिक्षा के कारण स्त्रियों की स्थिति में सुधार का आन्दोलन—शिक्षा का प्रसार—बड़ी उम्र में विवाह—परदे की समाप्ति—सार्वजनिक जीवन में शनैः शनैः प्रवेश—पुरुषों के समान चुनाव में मत देने का अधिकार—मन्त्री और गवर्नर पद तक स्त्रियों का पहुँचना।

भारत में स्त्रियों का भविष्य उज्ज्वल—परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के दोषों से बचने की आवश्यकता।

पत्र-लेखन

(क) अशोक प्रकाशन मन्दिर
१९ जैना बिल्डिंग, रोशनारा रोड,
दिल्ली, १५. ७. ५०

(ख) पूज्यपाद पिताजी,

(ग) सादर प्रणाम।

(घ—मुख्य विषय)

आपका पत्र प्राप्त हुआ था। परीक्षा के कारण मैं शीघ्र उत्तर न दे सका। क्षमा करेंगे।

यहाँ सब प्रसन्न हैं। माताजी अब स्वस्थ्य हो गई हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। परीक्षा भी भली प्रकार बीत गई। यों परीक्षाफल के बारे में कोई निश्चय से कह नहीं सकता, पर मुझे यह सन्तोष है कि मैंने परचे अच्छे किये हैं। परमात्मा की कृपा रही तो मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होऊँगा।

आप दौरे से कब लौटेंगे ? इन्द्रप्रभा कह रही है कि मेरे लिए खिलौने जरूर लेते आवें।

(ङ) आपका विनीत पुत्र
अशोक

POSTCARD

(च)

पाँच नये
पैसे का
टिकट

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार
मार्फत हिन्दी-भवन
इलाहाबाद

यह एक पत्र है। इसे ध्यान से पढ़ने पर मालूम होता है कि इस पत्र के निम्नलिखित छह भाग हैं :—

क—अपना पता और तारीख

ख—संबोधन

ग—अभिवादन

घ—पत्र का मुख्य विषय

ज—लेखक का नाम

च—लिफाफे या कार्ड पर पता

(क) अपना पता और तारीख

पत्र की दाहिनी ओर सब से ऊपर अपना पता लिखना चाहिए। पता बहुत बेढंगा और अस्पष्ट नहीं होना चाहिए। सब से पहले अपने मुहल्ले, बाजार या दफ्तर, कारखाने या कम्पनी का नाम लिखो और उसके नीचे शहर का नाम। यदि गाँव में रहते हो, तो डाकखाने और जिले का भी नाम लिखना चाहिए। इसके नीचे तारीख भी लिख देनी चाहिए। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. हिन्दी-भवन,
३७० रानी मंडी
इलाहाबाद ३
५—४—५०

२. 'वीर अर्जुन' कार्यालय
नया बाजार,
दिल्ली
८—३—४९

३. ८०५, चाँदनी चौक
दिल्ली
२०—४—४८

४. रामजीदास ऐंड कं०
रावतपाड़ा, आगरा
८—९—४६

हिन्दी सौर मिति भी उपर्युक्त विधि से लिखी जाती है, लेकिन चान्द्र तिथि लिखने का तरीका यह है—

चैत्र शुक्ला/कृष्णा ५, २००५ माघ सुदी/वदी ८, २००७

(ख) संबोधन

पत्र की बाईं ओर तारीख के नीचे संबोधन लिखा जाता है। जिसे पत्र लिखना है, उसकी स्थिति के अनुसार संबोधन भी अलग-अलग होते हैं। प्रत्येक सम्बोधन में शिष्टाचार का ध्यान रखना चाहिये।

अपने से बड़ों को :—

पूज्य पिताजी, माननीय चाचाजी, आदरणीय माताजी, मान्यवर गुरुजी, श्रद्धेय महात्माजी। यह ख्याल रहे कि जिसे पत्र लिखना है, उसका असली नाम नहीं लिखना चाहिये।

अपने बराबर वालों को :—

प्रिय भाई, प्यारे मित्र, स्नेही बन्धु, प्यारी सहेली, प्रियवर धर्मदेव, प्रिय बहन।

अपने से छोटों को :—

प्रिय पुत्र, प्यारे भाई, प्यारी बहन, प्यारे रमेश आदि।

(ग) अभिवादन

अभिवादन संबोधन के आगे दूसरी पंक्ति में लिखना चाहिये।

अपने से बड़ों को :—

सादर प्रणाम, प्रणाम, नमस्ते।

अपने बराबर वालों को :—

नमस्ते, वन्दे, जय हिन्द।

अपने से छोटों को :—

नमस्ते, आशीर्वाद, चिरंजीव रहो।

(घ) पत्र का मुख्य विषय

संबोधन और अभिवादन के बाद कुछ स्थान छोड़ कर मुख्य विषय शुरू करना चाहिये। विषय को लिखने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये :—

(क) प्रारम्भ करने के कुछ उदाहरण यह हैं :—

(१) कृपा पत्र मिला। (२) आपका कुशल समाचार मिले बहुत दिन हो गये। (३) मैं पिछले दिनों इतना कार्यव्यस्त रहा (या बीमार रहा) कि आपके पत्र का उत्तर न दे सका। (४) मैं सकुशल हूँ आशा है कि आप भी (यदि परिवार से कुछ परिचय हो तो सपरिवार) सानन्द और स्वस्थ होंगे आदि।

(ख) इसके बाद बगैर लम्बी भूमिका बाँधे काम की बात लिखनी चाहिये। पत्र में लम्बे वाक्य न हों। भाषा सरल हो। पत्र इस तरह लिखो, जैसे तुम बातें कर रहे हो, पर पत्र बहुत बड़ा न हो। संक्षेप में अपनी आवश्यक बातें लिख दो।

(ग) यदि पत्र अपने से बड़ों को लिख रहे हो तो ध्यान रखो कि पत्र के प्रत्येक वाक्य से विनम्रता टपके। बराबर वालों को और अपने से छोटों को भी पत्र लिखते हुए मित्रभाव और स्नेहभाव का ध्यान रखो। अपमान की ध्वनि उसमें न हो।

(४) अन्त में बड़ों से "मेरे योग्य कोई सेवा" आदि नम्र शब्दों में पूछ लेना चाहिये। वहाँ के बच्चों के बारे में भी एक आध शब्द लिखना अच्छा रहता है।

(ङ) लेखक का नाम

पत्र की समाप्ति के बाद दाईं ओर अपना नाम लिखना चाहिये लेकिन उससे पहले जिसे पत्र लिख रहे हो, उसके प्रति शिष्टाचार पूर्ण

शब्द लिखने चाहिये। जैसे :—

अपने से बड़ों को —

(१) आपका विनीत पुत्र, सुभाष। (२) आपकी आज्ञाकारिणी पुत्री, इन्द्रप्रभा। (३) आपकी स्नेहमयी पुत्री, गार्गी। (४) आपका कृपाकांक्षी, देवकीनन्दन। (५) आपका चरणसेवक, नन्दलाल। (६) आपका प्रेमपात्र, सत्यपाल।

अपने बराबर वालों को :—

(१) आपका प्रिय मित्र, रामदेव। (२) तुम्हारा स्नेही, चन्द्रभानु। (३) तुम्हारी बहन, कलावती।

अपने से छोटों को :—

(१) तुम्हारा शुभाकांक्षी, चन्द्रगुप्त। (२) तुम्हारा हितैषी, रामनिवास।

अपना नाम नीचे दूसरी पंक्ति में कुछ दाईं ओर हटा कर लिखना चाहिये।

(च) पता

पत्र का अन्तिम अंग पता है। लिफाफा हो या कार्ड, दोनों में टिकट वाली ओर पता लिखना चाहिये। सबसे पहले उसका नाम लिखना चाहिये, जिसे पत्र भेजा है। नाम के साथ भी श्रीयुत, लाला, पण्डित आदि लिखना चाहिये। नाम के पीछे कोई पदवी या खिताब वगैरह हो, तो वह भी लिखना चाहिये। नाम के नीचे गली, मुहल्ला, स्कूल, दफ्तर, कारखाना, घर या दुकान, बाजार का नम्बर भी लिखना चाहिये। उसके नीचे डाकखाने का नाम। डाकखाने के नीचे यदि रेखा खींच दें तो डाकखाने की सुविधा बढ़ जाती है। अन्त में कोष्ठ में में ज़िले का नाम लिखना चाहिए।

पत्रों के कुछ उदाहरण

(१) माता से कुशल समाचार पूछना :—

म्यूनिसिपल मिडिल स्कूल
बाजार सीताराम, दिल्ली
२५ अगस्त १९४८

माननीय माताजी,

सविनय प्रणाम ।

बहुत दिनों से आपका कृपापत्र प्राप्त नहीं हुआ। क्या आप अप्रसन्न हैं ? आप अपनी कुशलता का समाचार शीघ्र लिखें। मैं दशहरे की छुट्टियों में आपके पास आ सकूँगा, इससे पहले तो छुट्टी मिलना कठिन है ।

यहाँ आजकल कई दिनों से वर्षा हो रही है। वहाँ क्या हाल है ? छोटा भैया तो खूब खेलता होगा। उसे देखने को दिल बहुत चाहता है। उसे मेरी ओर से प्यार ।

अपनी कुशलता का समाचार अवश्य लिखें।

आपका विनीत पुत्र,
देवकीनन्दन

(२) छोटे भाई की मृत्यु पर सांत्वना :—

५६५ हरिसन रोड
कलकत्ता
३०-११-४७

प्रिय मित्र रामशरण,

नमस्ते

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे छोटे भाई की अकाल मृत्यु का

शोक-समाचार पढ़ कर अत्यन्त दुःख हुआ। मुझे तो यह विश्वास ही नहीं होता कि वह यह संसार छोड़ गया है! उसका हँसता हुआ चेहरा मुझे रह-रह कर याद आता है। मैं सोचता हूँ कि इस दुर्घटना से तुम्हारी प्रेममयी माँ का क्या हाल हुआ होगा! उनकी विपत्ति की कल्पना भी करना असंभव है।

मुझे स्वयं नहीं सूझता कि मैं किन शब्दों में तुम्हें तसल्ली दूँ? लेकिन भाई, उस परमात्मा के आगे किसी की नहीं चलती। जो चला गया, वह लौट कर नहीं आयगा। यह संसार तो अनित्य है, हर एक को ज़रूर जाना है। तुम समझदार हो, अपने आप को ही नहीं, माँ को भी तसल्ली देना। और वह प्यारी छोटी बहन, जो उसके कंधों पर चढ़ी रहती थी, कैसे इस कष्ट को सहन करती होगी!

मुझे दफ़्तर से छुट्टी नहीं मिली। इसलिए आगामी रविवार को मैं आऊँगा।

तुम्हारा शोकातुर भाई,
विश्वम्भरनाथ

प्रार्थना-पत्र

प्रार्थनापत्र या अर्जी लिखते हुए भी उन सब नियमों का ध्यान रखना चाहिये, जिनका निजी पत्रों में उल्लेख किया गया है। लेकिन निजी पत्रों से इनमें कुछ अन्तर भी होते हैं। वे अन्तर ये हैं :—

(१) लेखक का पता और तारीख ऊपर देने के बजाय पत्र की समाप्ति पर बाईं ओर लिखनी चाहिये।

(२) प्रार्थना पत्र में सबसे ऊपर 'सेवा में' लिख कर जिसे प्रार्थना-पत्र लिखना हो, उसकी पदवी और पता आदि लिखना चाहिये।

(३) सम्बोधन में आदर आदि तो हो, लेकिन लम्बा न हो।

(४) अभिवादन की आवश्यकता नहीं है।

(५) मुख्य विषय अत्यन्त संक्षेप से, परन्तु स्पष्ट शब्दों में, लिखना चाहिये। कुशल प्रश्न आदि नहीं करने चाहिये।

(६) नीचे बाईं ओर तारीख और अपना पता तथा दाईं ओर अपना नाम लिखना चाहिये। नाम लिखते हुए 'आपका विनीत' 'आपका आज्ञाकारी' 'आपका विनम्र सेवक' आदि शिष्टाचारपूर्ण शब्द अवश्य लिखने चाहिये।

कुछ आवेदन-पत्र

(१) छुट्टी के लिए

सेवा में

श्रीमती मुख्याध्यापिका,
शारदा विद्यालय,
सब्जी मंडी, दिल्ली।

मान्य बहन जी

निवेदन है कि मेरे भाई का विवाह १२ जुलाई १९५० को होना निश्चित हुआ है। बरात ११ जुलाई को जायगी। सविनय प्रार्थना है कि मुझे ता० ९ जुलाई से १४ जुलाई तक की छुट्टी प्रदान करने की कृपा करें।

आपकी आज्ञाकारिणी
पुष्पा सेठी
७म श्रेणी

ता० ८ जुलाई, १९५०

(२) काम सीखने की प्रार्थना

सेवा में—

सेक्रेटरी दिल्ली क्लाथ मिल्स,
दिल्ली।

श्रीयुत महोदय,

मुझे मिल के एक कार्यकर्त्ता से मालूम हुआ है कि आप वाशिंग डिपार्टमेंट में कुछ नये सीखने वाले भरती कर रहे हैं। मैं भी इस कार्य को सीखना चाहता हूँ। यदि आप मुझे अवसर देंगे, तो मैं बहुत जल्दी इस काम को सीख कर आपको सन्तुष्ट कर सकूँगा। मैं मिडिल पास हूँ। पिताजी की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण आगे नहीं पढ़ सकता। शरणार्थी होने के कारण घर की आमदनी भी नहीं रही।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे अनुमति दे कर कृतार्थ करेंगे।

२४ पटेलनगर, दिल्ली
१९-१०-४९
आपका विनीत—
लाल बहादुर

(३) समाचार छापने की प्रार्थना :—

सेवा में—

श्रीयुत सम्पादक, 'वीर अर्जुन',
दिल्ली।

श्रीयुत महोदय,

मैं अपने स्कूल के, जो शरणार्थियों के लिए एक वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था, वार्षिकोत्सव का समाचार भेज रही हूँ। अपने सम्मानित पत्र में प्रकाशित करने की कृपा करें। इस कष्ट के लिए क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

हाई स्कूल, गाजियाबाद
४ अक्टूबर, १९४९
आपकी
इन्दिरा

(४) शिकायती पत्र

सेवा में

हेल्थ आफिसर,

कारपोरेशन, दिल्ली।

महोदय,

जब से बरसात शुरू हुई है, पुरानी सब्जीमंडी के पीछे वाली सड़क बहुत ही खराब रहने लगी है। सब पानी बह कर नीचे आ जाता है और नाली से पानी का निकास नहीं होता। सब्जीमंडी के पास की टट्टी से मैला नाली में गिरता रहता है। भंगी ठीक तरह साफ नहीं करते। इससे बदबू और भी बढ़ जाती है। वहाँ से गुज़रना भी कठिन हो जाता है। वहाँ से मक्खियाँ उड़-उड़ कर सब्जी पर बैठती हैं और इस तरह सारे शहर में बीमारी फैलाने का कारण बनती हैं।

आशा है आप इसकी उचित व्यवस्था करेंगे।

सब्जीमंडी
१०-७-४९

आपका—
गंगादत्त वैद्य

कामकाजी पत्र

कामकाजी पत्रों में भी निजी पत्रों से थोड़ा बहुत अन्तर होता है। कामकाजी पत्र में :—

(१) अपने पते और तारीख के नीचे पत्र पाने वाले का नाम और पता भी बाईं ओर लिखना चाहिये।

(२) सम्बोधन में आदरसूचक शब्द की जरूरत नहीं है। 'माननीय' 'आदरणीय' आदि नहीं लिखना चाहिये।

(३) कुशल समाचार की आवश्यकता नहीं होती।
(४) पत्र बहुत संक्षेप में लिखना चाहिये।

कुछ कामकाजी पत्र आगे दिये जाते हैं :—

(१) १००० रु० कर्ज माँगना

रामनिवास,
कचहरी रोड, जालंधर
१०-३-४७

ला० रामभरोसेलाल श्यामलाल महाजन
जालंधर

प्रिय महाशय,

कुछ दिन हुए, मैंने आपसे निवेदन किया था कि यदि आप मुझे १००० रु० एक वर्ष के लिए कर्ज देंगे तो मुझ पर बहुत कृपा होगी। इस समय रुपये की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि दुकान के लिए नया माल मँगाना है।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि नियत अवधि के पहले ही आपकी सब रकम मय सूद चुकाने का यत्न करूँगा। आप जिस दिन के लिए कहें मैं वहाँ आ कर तमस्सुक लिख दूँगा। इस कष्ट के लिए क्षमा करेंगे।

आपके उत्तर की प्रतीक्षा में—

आपका—
गिरधारी लाल